TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180864

UNIVERSAL LIBRARY

H 81.6 | M64B GH.1536
मिलिंद जगन्नाथप्रसाद
बलिपथ के गीत / १९८०

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6/M64B Accession No. G.H. 1536

Author मिलिंद जगन्नाथप्रसाद।

Title बलिपथ के गीत। 1950.

This book should be returned on or before the date last marked below.

बलिपथ के गीत

रचयिता
जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

आत्माराम एण्ड सन्स
पुस्तकप्रकाशक तथा विक्रेता
काश्मीरी गेट - दिल्ली

प्रकाशक:—
रामलाल पुरी,
आत्माराम एण्ड सन्स,
काश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रथम संस्करण
अक्टूबर, १९५०
११०० प्रतियाँ
मूल्य २॥)

मुद्रक:—
रामलाल पुरी,
यूनिवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली

प्रारम्भिक

इसके पूर्व, मैं अपनी सन् १९२२ से १९३६ तक की कविताओं का पहला संग्रह 'जीवन-सङ्गीत' के नाम से तथा सन् १९३६ से १९५२ तक की कविताओं का दूसरा संग्रह 'नवयुग के गान' के नाम से पाठकों के सामने रख चुका हूँ। अगस्त सन् १९५२ से अगस्त सन् १९५९ तक की चालीस कविताओं का यह मेरा तीसरा संग्रह आज प्रस्तुत हो रहा है।

इन पिछले सात वर्षों में संसार और मेरा देश अनेक विविध परिस्थितियों से गुज़रा और स्वभावतः मेरे जीवन और हृदय पर भी उनका प्रभाव पड़ा। उस प्रभाव ने समय-समय पर जैसे वातावरणों का निर्माण किया तथा जिन अनुभूतियों, भावनाओं और वेदनाओं का सृजन किया, उनकी अभिव्यक्तियाँ अधिकांशतः मेरी इन कविताओं में व्यक्त हो उठी हैं। उन परिस्थितियों से मिलाकर इन कविताओं का मर्मस्पर्श सुविधापूर्वक किया जा सके, इसके लिए मैंने प्रत्येक कविता के नीचे उसके रचनाकाल का उल्लेख कर दिया है।

समकालीन परिस्थितियों से अपने हृदय को बिलकुल अछूता रखकर अननुभूत विषयों के अनुमान पर आधारित केवल कल्पनाओं ही को कविता का आधार बनाना भी कला की एक कोटि हो सकती है। पर, उसकी कोई आलोचना किए बिना ही, मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरी ये कविताएँ उस कोटि से कुछ भिन्न हैं और मुझे इस भिन्नता पर कोई सङ्कोच नहीं है।

पुरातन कलाकारों ने जिन उपकरणों को अपनी कला का आधार बनाया, उनमें से अनेक आरंभ में सम्भवतः नए और उनके समकालीन रहे होंगे। किन्तु, आज उन्हें जो इतना अधिक गतानुगतिक सौन्दर्य प्राप्त हो गया है, उसका कारण यह है कि उनके बाद की अनेक पीढ़ियों के अनेक कलाकारों ने अपना नया पथ न बनाकर उन्हींके पथ का अनुसरण किया; अपने युग के नए उपकरणों का अवलम्बन न करके गत युग के उपादानों ही का आश्रय लिया। युग-युग तक जिस पथ का अनुसरण किया जाता है, उसे एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य प्राप्त होना स्वाभाविक हो ही जाता है, किन्तु, बाद की पीढ़ियों की अनुकरण-प्रियता को इसके लिए, मेरी राय में, कुछ अधिक श्रेय नहीं दिया जा सकता।

मेरा समकालीन तथा मेरी कल्पनाओं और आदर्शों का आराध्य नया विश्व और नया भारत अभी बनता जा रहा है। पुराने विषयों के सरल प्रलोभन को छोड़कर मैंने अपने युग के विषयों को अपनी कविता का विषय बनाकर अपने को कुछ कठिनाई में अवश्य डाला। पर, मैं विवश था। जिन पुराने विषयों की प्रेरणा से हृदय की तन्त्री के तारों में अब झङ्कार ही उत्पन्न नहीं होती, उन्हें मैं अपनी कविता का आधार बना ही कैसे सकता था? उससे तो कविता की सारी स्वाभाविकता ही नष्ट हो जाती।

पिछले वर्षों में मेरे जीवन और विचारों को जिन सङ्घर्षों और चिन्तन-क्रान्तियों में विनम्र किन्तु कुछ सक्रिय भाग लेना पड़ा, उनसे सम्बद्ध भावनाओं और कल्पनाओं ने मेरे हृदय को बरबस अभिभूत किया और हृदय पर जो भावनाएँ छा जाती हैं, उनकी अभिव्यक्ति करने को हृदय विवश हो ही जाता है। इस भावना-विवशता में कविता की एक अदम्य प्रेरणा निहित होती है।

ईमानदारी को मैंने कला की एक अनिवार्य आवश्यकता माना है। इस ईमानदारी का तक़ाज़ा रहा है कि मैं जो अनुभव करूँ और जिस रूप में करूँ, उसी अनुभव को और उसी रूप में कविता की पंक्तियों में उतारूँ। अतएव, जो मेरे जीवन और चिन्तन के प्रिय विषय रहे हैं, वही स्वभावतः मेरी कविता के प्रिय विषय बन गए हैं और जिन विषयों को मेरे जीवन और चिन्तन में प्रमुख स्थान न मिल सका, वे ज़बर्दस्ती मेरी कविता को प्रभावित नहीं कर पाए हैं। पाठकों की रसज्ञता किसी विषयविशेष की बन्दिनी तो होती ही नहीं है; उससे तो यही आशा की जाती है कि वह कविता के विषय के साथ कवि के तादात्म्य ही को अपने रसास्वादन के तारतम्य का कारण मानेगी।

मेरे उपर्युक्त पिछले दोनों कविता-संग्रहों को अपनाकर पाठकों ने मुझे जो प्रोत्साहन दिया है, उसने मुझे प्रेरित किया है कि मैं यह आशा करूँ कि मेरे इस तीसरे नए कविता-संग्रह को भी पाठक पसन्द करेंगे।

ग्वालियर,
२-१०-५०

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

बन्धुवर बनारसीदास जी चतुर्वेदी को

शान्तिनिकेतन-यात्रा की स्मृति में

कवि के जीवन पर एक दृष्टि

जन्मस्थान

श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का जन्म मुरार (**ग्वालियर**) में हुआ।

जन्मतिथि

कार्तिकी पौर्णिमा सम्वत् १९६४ वि०

शिक्षा

मुरार हाई स्कूल में प्रारम्भिक, तिलक राष्ट्रीय विद्यालय, अकोला (**बरार**) में मैट्रिक तक, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना से मैट्रिकुलेशन परीक्षा, उसके बाद साहित्य और समाजविज्ञान-की उच्च शिक्षा काशी विद्यापीठ, बनारस के राष्ट्रीय कालेज में। हिन्दी और अँगरेजी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू, मराठी, बंगला और गुजराती भाषा का भी ज्ञान है।

पुस्तकें

आपकी रचनाओं में 'प्रताप-प्रतिज्ञा' (**नाटक**), 'जीवन संगीत', 'नवयुग के गान' तथा 'बलिपथ के गीत' (**कवितासंग्रह**) और 'चिन्तनकण' (**निबन्धसंग्रह**) प्रकाशित हो चुके हैं तथा एक नया नाटक लिखा जा रहा है।

कार्य

विश्वभारती शांतिनिकेतन (**बंगाल**) तथा म० आश्रम, वर्धा (**मध्यप्रदेश**) में अध्यापक तथा प्रयाग और अजमेर में साहित्यसेवी तथा राष्ट्रकर्मी के रूप में रहे। लाहौर की मासिक पत्रिका 'भारती' तथा ग्वालियर के अर्धसाप्ताहिक पत्र 'जीवन' के सम्पादक रहे। ग्वालियर स्टेट कांग्रेस के प्रधानमंत्री तथा मध्यभारत प्रांतीय कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य रहे। सन् १९४२ के आन्दोलन में तथा बाद में भी जेलों में रहे। कांग्रेस द्वारा शासन ग्रहण किए जाने पर मिनिस्टर पद स्वीकार करने का अनुरोध किए जाने पर उसे अस्वीकार कर चुके हैं। मध्यभारत समाजवादी पार्टी के सर्वसंमति से दो बार लगातार प्रान्तीय प्रमुख चुने जा चुके हैं। वृहत्तर ग्वालियर साहित्यकारसंघ तथा पत्रकारसंघ के अध्यक्ष भी रहे।

पिछले दिनों अस्वास्थ्य तथा अन्य अधिक व्यस्तताओं के कारण साहित्यनिर्माण में पर्याप्त समय न लगा सके। किन्तु, अब पुनः साहित्यक्षेत्र में भी अधिक कार्य करने का संकल्प किया है।

आजकल लश्कर (**ग्वालियर**) में रहकर अपने समय का एक काफ़ी बड़ा अंश ग्रन्थ-लेखन तथा स्वतंत्र पत्रकार के कार्य में लगाना चाह रहे हैं। देश के अनेक प्रतिष्ठित हिन्दी, अँगरेजी, गुजराती, मराठी, बँगला आदि भाषाओं के दैनिक पत्रों के प्रतिनिधि है। कुछ ग्रंथों के निर्माण की योजना भी उनके सामने है।

—प्रकाशक

कविता-सूची

१—साधना-पथ

(१) बलिपथ पर १३
(२) मानव-हृदय १५
(३) नाविक और तूफ़ान १७
(४) पथिक से १९
(५) साधना-प्रदीप २१
(६) साधक २३

२—बापू

(७) बापू के आँसू २९
(८) विश्वज्योति गाँधी ३५
(९) गाँधी-जयन्ती पर ३८
(१०) बापू की हत्या पर ४०

३—किसान

(११) किसान का जन्म-दिन ४५
(१२) किसान की चुनौती ४८
(१३) किसान से ५०

४—ज्योति-कण

(१४) दो दीपावलियाँ ५७
(१५) अनुभूति ५९
(१६) पथिक और दीपावलि ६०

५—कला-प्रकृति-दर्शन

(१७) कलाकार से ६५
(१८) चाँदनी ६९
(१९) मानव-मन ७२

कविता-सूची

६—कारा की दीवारों में

(२०) क़ैदी और क्रान्ति ७७
(२१) दीपक का नवजीवन ८२
(२२) वर्षागम के पूर्व ८४

७—क्रान्ति के, इतिहास के क्षण

(२३) अगस्त-क्रान्ति का गीत ८६
(२४) क्रान्ति-प्रेमी का प्रेम ९१
(२५) विद्रोही ९३
(२६) विप्लव और विधान ९४
(२७) तरुण के प्रति ९६
(२८) दिल्ली में हलचल क्या है ? ९८

८—दासता की वेदना के स्वर

(२९) परतन्त्रों का आत्मनिरीक्षण १०३
(३०) परतन्त्र भारत की आत्मग्लानि १०५
(३१) विश्वयुद्ध-सैनिक भारत में १०९

९—श्रद्धा-सुमन

(३२) नेताजी सुभाष की स्मृति ११५
(३३) शहीद की विधवा से ११८
(३४) राष्ट्रवीरों के स्वागत में १२२

१०—स्वतन्त्रता के बाद

(३५) नव-निर्माण १२७
(३६) मुक्त राष्ट्र के तरुणों से १२९
(३७) पन्द्रह अगस्त पर १३२

११—समता की ओर

(३८) ऐसा वसन्त कब आएगा ? १३७
(३९) मन्वन्तर १४०
(४०) बढ़ो, वीर, नव-पथ पर ! १४२

साधना-पथ

बलि-पथ पर

और न कोई साथी, केवल
अन्तरतम का स्वर सहचर है;
साधक-पथिक मर्त्य मानव है,
किन्तु, साधना अजर-अमर है।

रज-कण को हिम-गिरि बनना है,
जल-कण को सागर होना है;
पद-पद पर, विशाल तरु के हित,
अथक, बीज लघु-लघु बोना है।

बादल का जय-घोष नहीं है,
विद्युत्-प्रभा न बलि-पथ पर है;
एकाकी उत्सर्ग यहाँ है,
मौन दीप का जलना भर है।

परिचित निज दुर्बलताओं से,
आदर्शोन्मुख श्वास-श्वास पर,
जैसा है, मानव मानव है,
जग की प्रगति इसी पर निर्भर।

हृदय-रक्त ही से, नव-युग की
आशा को, पोषण पाना है;
बलि-पथ उसी पथिक का पथ है,
जग को जिसे भूल जाना है।

आमिष से, भय से प्रेरित हो
आगे-पीछे क़दम बढ़ाना,
यह इस पथ की रीति नहीं, यह
स्वर्ण और पशु-बल ने जाना।

निन्दा-स्तुति के कूलों में हो
जीवन-निर्झर बहता जाता;
हास-अश्रु, सुख-दुख हैं इसके,
किन्तु, न उनसे यह रुक पाता।

नग्न साधना बने चुनौती
शोषण पर पलने वाले को,
तो क्यों चिन्ता हो, बलि-पथ पर
अविरत-गति चलने वाले को?

१७/११/४४

मानव-हृदय

मानव-हृदय वहाँ पाता हूँ,
जहाँ पराए अपने बनते,
मिल-जुल, सुख-दुख में हँस-रो कर,
उठते-गिरते, बढ़ते-रुकते,
चलते रहते जीवन-पथ पर;
मानवता की गति के स्वर में,
मैं निज गीत मिला, गाता हूँ।
मानव-हृदय वहाँ पाता हूँ।

जहाँ करोड़ों शोषित, निर्धन,
मुक्ति-प्राप्ति के लिए, सजग बन,
मोह स्वर्ग का, भय कारा का—
छोड़, बनाते लोक-सङ्गठन;
क्रान्ति-नाद सुन, स्वप्न-जगत् से
मैं भी ऊपर उठ जाता हूँ;
मानव-हृदय वहाँ पाता हूँ।

जहाँ साधना और स्नेह का
द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता,
मनुज कहानी अपने मन की
अपने ही मन से है कहता;
चिर-गाथा उत्थान-पतन की
तन्मय क्षण में सुन आता हूँ;
मानव-हृदय वहाँ पाता हूँ।

बलि-पथ के पन्थी प्रियतम को
विदा जहाँ देती है नारी,
कटु सङ्घर्षों में भी होता वह
मधुमय स्मृति का अधिकारी;
शोणित, स्वेद, अश्रु का अनुभव
मैं निज उर में भर लाता हूँ।
मानव-हृदय वहाँ पाता हूँ।

१/६/४५

नाविक और तूफ़ान

मैं तूफ़ानों का नाविक हूँ,
मेरा निश्चय चिर - अविचल है,
कितना - सा भँवरों का गर्जन,
कितनी-सी इनकी हलचल है!

जब से है पतवार सँभाली
इस नौका की मैंने सहचर!
आई है विपत्ति क्षण-क्षण में,
है तूफ़ान उठा पद - पद पर।

मैं इन लहरों से परिचित हूँ,
अन्धड़ से मेरा नाता है;
प्रलय - प्रहारों में मेरे
प्राणों का स्वर गाता जाता है।

अपनी मृदु मुसकानों से मैं
सङ्कट - जाल काटता आया,
'सर्वनाश' जग जिसको कहता,
उसमें मैंने 'सब - कुछ' पाया।

मुझे चुनौती देकर जब - जब
क्रुद्ध दिशाओं ने ललकारा,
नयनों में ले प्रश्न विकम्पित
तुमने मेरी ओर निहारा,

तब-तब मैंने तुम्हें बताया—
यह तो मेरा जीवन - क्रम है;
पथ जिसको चुन लिया सदा को,
उस पर विचलित होना भ्रम है!

तब फिर क्यों इस बार पूछते—
क्या तट भी मिलना सम्भव है?
नित्य-नया यह अपना चलना,
यह लहरों का पथ चिर नव है!

तट मिल जाने पर तो, साथी,
तुम, नौका, पथ सब छूटेंगे!
ये मेरे युग - युग के परिचित
प्राणों के नाते टूटेंगे!

जीवन है यह अपना चलना,
जीवन तूफ़ानों का आना,
जीवन नौका की यह गति है,
सङ्घर्षों में मार्ग बनाना!

साहस का पथ जीवन - पथ है,
कष्टों का सहचर सहचर है,
अथक हाथ में जो अविरत हो,
वह पतवार अभय का वर है!

२५/१२/४६

पथिक से

कण्टकमय पथ पर क्षत-विक्षत
चरणों की शोणित-रेखा है,
अधरों पर मुसकान लिए
तुमको अविरत चलते देखा है।

रुक लो तुम भी क्षण भर, पथ पर
साथी डाल चुके हैं डेरा,
एक गीत सुन लो विराम का,
ले लो तुम भी ज़रा बसेरा।

यह क्या निष्ठुर पथिक, सभी से
क्यों नाता तोड़ा जाता है?
तुम तो चलते ही जाते हो,
पथ का अन्त नहीं आता है।

क्या कहते हो—सब से प्यारा,
लक्ष्य तुम्हारा, दूर अभी है।
आकर्षण का सूत्र न उसका
होता पल भर शिथिल कभी है।

प्राणों ने सङ्गीत निरन्तर
उसके स्मृति-स्वर का पाया है,
उर में निबिड़ ममत्व उसीका
वट की छाया-सा छाया है।

पथ के शूल उतार सकें,
कब अन्तर में वह क्षणिक नशा है,
जहाँ गीत, आकर्षण, छाया -
का अक्षय संसार बसा है।

रुकने वाले रुकें, तुम्हें तो
गति ही में विराम मिलता है।
पथ के तम के व्यवधानों में
भी उर का शतदल खिलता है।

जिसने बना रखा चिर-यौवन,
पथिक, तुम्हारे इस जीवन को,
लक्ष्य-प्रेम, वह प्रगति-प्रेरणा
दे दो जगती के जन-जन को।

१०/४/४८

साधना-प्रदीप

जला रहा है, दीप बना, तू
उर का ज्वाला-गिरि अपना,
इस प्रकाश से सत्य बनेगा
तेरे प्राणों का सपना।

वह सपना, जो हृदय-रक्त से
सिंच, छाया है जीवन में;
जिसकी प्रति-छवि देख रहा है
तू इस जग के कण-कण में।

तेरा स्वप्न सत्यका अनुचर,
शिव का अविचल साधक है;
सुन्दर का अविराम उपासक,
जन-हित का आराधक है।

आडम्बर, विस्तार नहीं है,
सीमाएँ लघु हैं सारी,
इसीलिए, यह दीप स्नेह का
है स्वाभाविक अधिकारी।

मिट्टी का तन, मिट्टी से पा
तूल, प्रकाशित होता है।
जल-जल, बन-बन फूल, उसी
मिट्टी में अर्पित होता है।

जिसका मूलाधार विभव,
प्रासाद, प्रलोभन, छल, शोषण,
उस जीवन को नग्न चुनौती
यह उत्सर्गों का जीवन !

जिन शोषक वर्गों ने जग में
अन्धकार फैलाया है,
मानवता के श्वास-रोध का
वातावरण बनाया है,

उनका अन्त निकट लावे यदि
यह प्रकाश की लघु रेखा,
इसका भी, इतिहास रखेगा,
किसी पृष्ठ पर कुछ लेखा !

२७/६/४८

साधक

अपने ही हाथों दे डाली
जीवन के बहुमूल्य सुखों की
आहुति आत्म-त्याग-ज्वाला में !
अपरिग्रही ग्रहण के युग में,
तुम सत्ता-लिप्सा से ऊपर,
चिर-पन्थी, तुम अविचल साधक !
तुम प्राणों में सत्य लिए हो,
तुम जीवन में लक्ष्य लिए हो !
मिथ्या आडम्बर के जग में,
स्वार्थ-साधुता, चाटुकारिता और दम्भ के
श्वास-रोध करने वाले इस
विषमय वातावरण, कलुष में,
भीतर-बाहर निर्मल, उज्ज्वल
तुम अपनी साधना लिए हो;
आदर्शों की अमर ज्योति की
अविरत आराधना लिए हो !

बधिर विश्व सुनता है उनकी,
जो केवल कहते हैं अपनी
कर्ण-विदारक उच्च स्वरों में,
तुम औरों की व्यथा-कथाएँ
कहने वाले प्रकृत कण्ठ से;
कौन तुम्हारी बात सुने इस विकृत विश्व में ?
कोलाहल में मौन, स्वार्थ-स्पर्द्धा में पीछे,
तुम दुख में आगे रहते हो,
वैभव में कुण्ठित, करुणा में
उर-प्रसून की खोला करते मृदुल पँखुड़ियाँ,
तुम विलासिता की वर्षा में
बन जाते सूखे निदाघ हो
और ग्रीष्म में विपदाओं के
मानवता पर छाकर पल-पल
बरस-बरस पड़ने वाले तुम
बन जाते हो सावन रिमझिम !

एक दीप,
बस एक दीप जलता है तप का,
जग की चकाचौंध की आँखों-
से ओझल एकान्त कुटी में,
चिर - जाग्रत,
हाँ, कभी-कभी कम्पित, पर, अक्षय,
अजय, अमर, संयम की स्वभाविक सीमा में,
प्रति-क्षण ज्योतित ज्योति-पुञ्ज से,
प्रतिपल पूरित विमल स्नेह से !
यही साधना - सात्त्विक, उज्ज्वल
जीवन - चित्र तुम्हारा !
प्रतिफल के वितरण के उत्सव
हैं असमर्थ लुभाने में सब

साधक

तुमको, तुम तो
केवल एक विन्दु पर अपना
केन्द्रित कर बैठे हो जीवन
और कर्म, निष्काम कर्म है केन्द्र विन्दु वह !

मानव हो,
दुर्बलताओं के पुतले मानव,
पथ से इधर-उधर भी पड़ते
कम्पित हो कर कभी-कभी ये चरण तुम्हारे,
पर, न छोड़ते कभी पन्थ तुम अपना !
होने देते कभी न ओझल आँखों से प्रिय लक्ष्य !
सुख-दुख के कूलों को छूती
वहती ही जाती है जीवन-धारा !
गति भी, संयम भी है इसमें,
है आवेग, धैर्य भी इसमें,
किस मधु-क्षण के अथक प्रतीक्षक
तुम चिर-विरही ?
कितनी दूर
तुम्हारी प्रियतम सिद्धि ?
युग आए, युग गए,
खिले, झड़ गए कुसुम-कुल,
पर, है वक्ष-शिला के नीचे
अक्षय यौवन-हास तुम्हारा !

१०/३/४६

बापू

(महात्मा गाँधी के सम्बन्ध में लिखित)

बापू के आँसू

(कस्तूरबा के देहान्त पर बापू की वेदना की एक कल्पना)

(१)

एक क्षण !
दो अश्रु-कण लघु, मूक, निर्मल !
दूसरे ही क्षण उठा चुपचाप
वस्त्र का कोना, विकम्पित हाथ से
ले गया वह पोंछ अपने साथ मानो
विन्दुओं में वेदना के सिन्धु दो !

(२)

हिल उठा आ-मूल क्षण-भर
अचल दृढ़ता का वही गिरि,
वज्र भी जिसको नहीं पाता हिला
क्रुद्ध पशुबल के दमन-आघात का।
देखते ही रह गए सब;
दूसरे ही क्षण पुनः वह
शान्त, स्थिर, निष्कम्प था।

(३)

बाँध था जो एक
युग-युग से बँधा,
एक क्षण आया व्यथा का वेग ले,
टूटता-सा ज्ञात वह उसमें हुआ;
साथ लेकर दूसरा क्षण आ गया
आत्म-संयम का सहारा
वह सुपरिचित,
वह पुराना।
देखते ही रह गए सब ;
थी पुनः प्रत्येक मर्यादा अखण्डित।

(४)

एक अर्धशताब्दि से भी अधिक जो
साथ थीं सुख-दुःख में,
सङ्घर्ष में,
व्याप्त जिनसे अखिल जीवन;
अमित स्मृतियाँ
जुड़ चुकी थीं विविध
जिनके साथ;
जो प्रथम आई किशोरी एक बन
अपरिचित गृह में
अजान किशोर के;
सत्य-पथ के पथिक पति का
साथ दे श्रद्धा-सहित,
कर मूक सेवा, त्याग, तप की
साधना अति-दीर्घ,
बन गई 'माँ' दलित-शोषित मनुजता की।

(५)

सामने, 'बा' को उठाकर,
रख रहे परिजन चिता पर।
पोंछ डाले अश्रु जिनके,
देखते वे नयन अपलक।
आँसुओं से भी न पति के
धुल सका शव त्यागिनी का;
अश्रु जल का भी न खुलकर
पा सकीं वह अर्घ्य अन्तिम!
था सदा पति ने सिखाया :—
"त्याग जीवन-भर करो जग के लिए;
किन्तु, अपने हेतु तुम,
कुछ न लेना, कुछ न पाना!"

(६)

स्नेह के कण तो
करोड़ों मानवों में बँट गए;
रिक्त पति की रिक्तता की
रह गई थीं स्वामिनी वह।
एक क्षण चाहा—सिमटकर स्नेह वह
अश्रु-गङ्गा बन भिगो दे अन्त में
स्नेह की एकान्त उस अधिकारिणी को।
पर, विफल वह एक क्षण का यत्न था।
दूसरे ही क्षण नयन जल-हीन 'बापू' के हुए;
स्निग्ध ज्यों-के-त्यों बने ही थे हृदय
उधर अगणित मानवों के
स्नेह से,
हो चुका निःशेष था जो सब
कभी का बँटकर उन्हींके बीच में।

(७)

था अभी खोया सहायक वह अथक,*
जो सजीव प्रतीक था मानो बना
विश्व-भर के सब प्रशंसक-वर्ग के विश्वास का;
सहचरी, अर्धाङ्गिनी भी अब गई,
जो अकेली मूर्ति, प्रतिनिधि-रूप, थीं
अचल श्रद्धा की अमित अनुयायियों की।
अन्त के सकरुण क्षणों में
नाम के
दो विफल 'आह्वान' उनको थे मिले, †
'अश्रु' दो पोंछे गए इनके लिए।
लुट गए आधार दोनों,
हो गए स्मृति-शेष कारा-वास ही में।
देखते ही रह गए लोचन चिताएँ सामने!
किन्तु, अपने आपके प्रति ही सदा
अधिक निष्ठुर हृदय बापू का रहा।
पी गए अपनी व्यथा का
सब हलाहल आप ही!
व्यक्तिगत दुख छिपा उस उच्छ्वास में,
जो करोड़ों पीड़ितों की वेदना का ज्ञान से,
उठ हृदय से, व्याप्त हो रहता उसी में।

(८)

सान्त्वना भेजी जवाहरलाल को
और कारागार में आज़ाद को,‡
जो न अन्तिम झलक भी थे पा सके,
धैर्य का सन्देश भेजा
मौन द्वारा, प्रार्थना के मार्ग से।

*स्व० श्री महादेव देसाई। †"महादेव! महादेव!!"
‡श्रीमती कमला नेहरू तथा मौलाना अबुलकलाम आज़ाद की पत्नी के देहान्त पर

पर स्वयं तुम आज जब
हो उसी क्षति से दुखी, बापू हमारे,
कौन तुमको धैर्य दे ?
कौन पोंछे अश्रु ?
और किसमें शक्ति, तुमको छोड़कर ?
तुम स्वयं दुःखी, स्वयं ही धैर्यदाता !
सिन्धु का तूफ़ान रोके कौन ?
कौन ऐसा, सिन्धु ही को छोड़कर ?
अनल-गिरि की करे ज्वाला शान्त,
कौन ऐसा शक्तिशाली है,
स्वयं गिरि के सिवा ?

(६)

तुम वचन के संयमी,
आचरण के संयमी तुम,
वसन ; भोजन के, विचारों के
चिरन्तन संयमी तुम,
दृढ़ रहे हो !
किन्तु, दुख के संयमी तुम,
अश्रुओं के संयमी,
रूप यह दृढ़तर तुम्हारा !
वेदना अवरुद्ध किससे है हुई ?
मौन रह सहना इसे क्या है सरल ?
हृदय फट जाता व्यथा-अवरोध से !
तुम सहो, तुम सहोगे ही;
सब हिलें, पर, गिरि न हिलते !
चरणतल में है पड़ी जो सृष्टि विस्तृत,
प्यार उससे, भार उसका !
कर्म के, कर्तव्य के बन्दी,
अचल तुम !

(१०)

अश्रु दो, हाँ, अश्रु दो।
पर, वे निमिष-भर ही रहे !
सह गए आघात तुम रह मौन ही
और यह दिखला दिया—
मनुज ही हो तुम, परन्तु, महान है
साधना अविचल तुम्हारी;
और कुछ भी तो असम्भव है नहीं
विश्व में, यदि करे मानव साधना।
पर, सभी तो साधना-रत हैं नहीं,
सह नहीं सकते सभी यों दुःख को;
विश्व के अगणित मनुज इस शोक के
प्रबलतम आघात से
रो रहे हैं, हो रहे विचलित, दुखी !
बेबसी में, बन्धनों में,
दीर्घ कारावास में जो,
क्षति उठाई, अश्रु पोंछे,
पृथक् जनता से रहे तुम, दूर—
सब समझते वे, हृदय जिनको मिला !
समझते हैं मूल्य, बापू,
आँसुओं का ये तुम्हारे
कोटि-कोटि स्वदेशवासी;
और यह भी हैं समझते
वे सभी, जो ले चुके
निज मातृभू की मुक्ति का व्रत—
"मूल्य देना है हमें इन आँसुओं का
रक्त के निज बिन्दु देकर !"

२४/२/४४

विश्व-ज्योति गाँधी

साम्राज्यवाद, तानाशाही,
हिंसा, पूँजीवादी शोषण,
रण-मद, आडम्बर, वर्ग-द्वेष,
भय, दमन, असत्य, द्वैध-जीवन,
कटु वर्ण-भेद, बहु सम्प्रदाय,
कितना विष, कितना वैर-भाव,
कितनी आपस की रक्त-तृषा,
कितना धोखा, कितना दुराव,
सात्त्विक जीवन पर व्यंग्य,
हाथ के उत्पादन का तिरस्कार,
श्रम के प्रति कुत्सित भाव,
भोग की लिप्सा का अतिशय प्रसार,
पर-स्वत्व-हरण, छल, छूत-छात,
दुर्दम्य घृणा, अति-निर्यातन,

आसुरी शक्तियों की सेना,
बल, वैभव, बुद्धि, शस्त्र, साधन,
कितनी पशुता, कितना कल्मष,
कितने दल-के-दल घिरे उधर;
तू इधर अकेला, अभय, नग्न,
सत्याग्रह के बल पर निर्भर !
घनघोर घटाएँ तूफ़ानी,
अन्धड़, उत्पात, अनन्त, प्रबल,
तेरा सब से सङ्घर्ष अथक,
तेरा प्रति-पल है धैर्य अचल !
तू शान्त-साधना का दीपक,
अक्षय तेरा निर्मल प्रकाश !
तू उर की धड़कन दलितों की,
शोषित मनुजों की प्राण-श्वास !
हिंसा-असत्य जिनके साधन,
ऐसे भी कुछ आदर्श-वाद !
था विश्व प्रयोगों में उनके
अब तक उलझा ! कितना प्रमाद !
वे सब आपस में टकराकर
अब हुए जा रहे शक्तिहीन;
उनके विनाश पर, नव जग की
मानवता जागेगी नवीन !
तू उस आशा की रेखा के
जीवित विश्वासों का प्रतीक !
जग का पथ होगा वही, जिसे
तू अब तक कहता रहा ठीक !
सब-कुछ खो चुकने वालों की
तू फिर सब पाने की आशा !
तुझसे ही अब समता सीखें
आचरण, विचार और भाषा !

तेरे प्रकाश में जग पाए
वह तत्त्व सत्य, शिव, चिर-सुन्दर,
जो मानवता को भारत का
हो सर्वोत्तम उपहार अमर !

२६/२/४४

गाँधी-जयन्ती पर

जो अन्तर् का अहम् मिटाकर
ज्योति-पन्थ पर बढ़ता जाए,
'बापू' के असि-धारा-व्रत का
अनुयायी, साधक कहलाए !

श्रद्धा-सुमन जयन्ती-माला-
में अर्पण का वह अधिकारी,
अपनी सत्ता लोक-व्यथा के
शमन-यत्न पर जिसने वारी।

प्रगति-चिह्न गाँधी-पथ का
केवल गाँधी-जय-घोष नहीं है;
वह पथ वीतराग का, जिसपर
द्वेष नहीं है, रोष नहीं है।

प्रति-पल प्रगति, साधना प्रति-क्षण
गाँधी में यह सत्य निहित था।
समता-संस्थापन के पथ पर
गाँधी का बढ़ना निश्चित था!

गाँधी-जयन्ती पर

नङ्गों-भूखों की कराह सुन
द्रवित न होता जिनका अन्तर्,
जो समता के प्रकट विरोधी,
वे कैसे गाँधी के अनुचर ?

सुखा-सुखा कर निज शोणित जो
जग की खेती हैं लहराते,
स्वयं दिगम्बर रहकर जग को
जो नव पीताम्बर पहनाते,

उन शोषित, पीड़ित, दलितों की
सेवा में मर-खप जाने में,
गाँधी-पथ की खोज मिलेगी,
अपरिग्रह के अपनाने में ।

शोषण की तलवार उठाकर
मुख से गाँधी-जय न निकालो !
ऐ शासन-सत्ता-धन वालो,
अपने डगमग चरण सँभालो !

२/१०/४८

बापू की हत्या पर

श्वास न केवल वह, जिसकी
धड़कन हो उर के पास;
श्वास वास्तविक है मानव की–
'लक्ष्य और विश्वास' !

छीन सका क्या घातक
गाँधी का अविचल विश्वास,
गिरि - सा उच्चादर्श, विमल
हिम - सा वह अक्षय हास ?

सब-कुछ अजर, अमर बापू का,
हास, लक्ष्य, विश्वास !
जन-जन के मन-मन में फैला
बनकर शुभ्र प्रकाश !

और कालिमा अपनी
समझेगा उसको इतिहास,
जिस कायर ने उस शरीर का
छल से किया विनाश !

बापू की हत्या पर

केवल आत्मा के स्वर से
भरकर भूगोल - खगोल,
गाँधी ने शरीर का समझा
था कितना-सा मोल !

जीवन-भर जो रहा घूमता
निज वक्षःस्थल खोल,
उसकी निर्भयता के आगे
हिंसा का क्या मोल ?

रक्त-मांस को गाँधी समझा,
इतनी भारी भूल !
गाँधी तो है निज युग की
संस्कृति का व्यापक मूल !

सर्वश्रेष्ठ मानव की
कहलाई यह जग में खान,
गाँधी ने इसको दिलवाया
था अपूर्व सम्मान;

घातक ने भारत-माता का
करवाया अपमान,
जग का सब से पतित मनुज भी
है इसकी सन्तान !

मानवता के इस कलङ्क की
लज्जा का इतिहास
जन्मभूमि युग - युग तक
ढो-ढो कर लेगी उच्छ्वास !

कोटि-कोटि मनुजों के उर में
था उसका जो प्यार,
बरबस बहा आँसुओं का
बन-बन कर पारावार !

भू-मण्डल के कोने-कोने—
से आई आवाज़—
मानवता का त्राता गाँधी,
हाय, कहाँ है आज ?

देशवासियो, उत्तर दो सब,
रोक अश्रु, उच्छ्वास—
सदा हमारे हृदयों में
होगा गाँधी का वास !

पूरा करो, अधूरा है जो
उसका प्यारा काम;
कल्मष, बर्बरता, हिंसा से
करो अथक संग्राम !

प्राण लगाओ, रक्त लगाओ
और लगाओ स्वेद;
नव जग का निर्माण करो,
संयत कर उर का खेद !

जिस विष ने सञ्चित हो-हो
बापू पर किया प्रहार,
तुम्हें मुक्त उस विष से
करना है सारा संसार !

३१/१/४८

किसान

किसान का जन्मदिन

१

है आज जन्म-दिन तेरा, मुझको खूब याद,
ओ ग्राम-कुटी के वासी, प्रिय मेरे, किसान !
आर्पित करने लाया हूँ मैं ये वन्य फूल,
शैशव के साथी का छोटा-सा स्नेह-दान !

२

वह खुली धूप, छाया, सरिता-तट वह प्रशान्त,
शिशु-लीलाओं से मुखरित वे सन्ध्या-प्रभात,
अब तक मेरे मानस-पट पर अङ्कित सजीव
अपने, स्मृतियों से गुँथे हुए, वे दिवस-रात !

३

मैं गाँव छोड़कर गया नगर, युग गया बीत,
महिमा का कर जय-घोष हुआ उसमें विभोर।
जन्मोत्सव महिमामय मनुजों के मना, श्रान्त,
ओ लघु ! मैं अब फिर आया हूँ इस ग्राम-ओर।

४

तू चकित जन्मदिन पर कर यह उपहार ग्राह्य !
मानो केवल देना है जग को तुझे दान !
कुछ भी पाना मानो तेरा है नहीं भाग,
उत्सर्गशील केवल तेरे प्रतिनिमिष प्राण ।

५

सम्मान न सीखा पाना तूने नाम-मात्र,
अवहेला तेरे जीवन-भर का प्राप्त कोष !
फिर भी, श्रम-रत, उत्पादन-पथ के अथक पान्थ !
ओ चिर-सहिष्णु, उत्साहपुञ्ज, अविजित, अरोष !

६

जो आडम्बर के आसन पर चढ़ बने उच्च,
ऐसे अमात्र अगणित, पाकर श्रद्धार्घ्य-दान,
धूमिल करते रहते इस जग की सत्य-दृष्टि
गुञ्जित करवा निज कीर्ति-गान से आसमान ।

७

नगरों के ऐसे पाखण्डों से बहुत दूर,
साधना-निरत, सात्विक-जीवन के महा-सत्य !
तू वन्दनीय जग का, चाहे रह छिपा नित्य,
इतिहास कहेगा—तेरे श्रम में रहा सत्य ।

८

मेरा यह गौरव—मैं तेरा हूँ बाल्य-बन्धु !
भूला शहरी जगमग में अब तक रहा राह ।
पछतावा मेरी नस-नस में है आज व्याप्त;
सम्बल है—तव सम्पर्क—लाभ की नई चाह ।

९

साहित्य-कला-सङ्गीत-कोष सब हुआ खर्व,
कैसे आडम्बर-मय दूँ मैं उपहार-दान ?
तू सरल, फूल ये सरल, विमल, हैं यही भेंट !
ले इन्हें, सखे, तू प्रकृति-पुत्र, ये प्रकृति-प्राण !

१०

चल आम्रकुञ्ज में, ले हार्दिक सम्मान आज,
ओ जग के जीवन-स्रोत देख अपना प्रकाश !
अब तक निज शोणित सुखा किया सन्तृप्त विश्व,
अब अपने अधरों पर भी ला उल्लास-हास !

११

सम्राटों का युग गया, मिटा धनपति-प्रभाव,
नेताओं का जयकार-वाद भी हुआ क्षीण !
खो चुके प्रतिष्ठा पिछली मन्दिर-मठाधीश,
जो महामहिम थे, हुए आज जीवन-विहीन !

१२

महिमा तेरे चरणों में मस्तक झुका आज—
कहती है—ओ लघु, थी तेरी ही राह ठीक ?
तुझ-से लघु कृषकों-श्रमिकों का युग उगा आज,
यह नव-संस्कृति लघुता की जय की है प्रतीक !

१०/१/४६

किसान की चुनौती

अनावृष्टि-अतिवृष्टि-कोप से
बचा अन्न-कण प्यारे
युग-युग से देता आया हूँ
स्वार्थी जग को सारे।

अन्न-कणों के बाद रक्त भी
बूँद-बूँद दे डाला!
मैं कङ्गाल! जल रही
जीवन में अभाव की ज्वाला!

मेरी सेवा के आश्वासन को
व्यवसाय बनाकर
सत्तारूढ़ हुए कितने
मुझसे मत-दान करा कर!

झोंपड़ियों को भूल बसाया
महलों का जग तृण में;
मेरा आँगन शून्य, स्वर्ण—
बरसा उनके आँगन में!

भोली श्रद्धा से यह निष्ठुर
खेल खेलने वाले !
पिला-पिलाकर दूध
स्वयं विषधर हैं मैंने पाले !

आज चुनौती है मेरी
युग-युग के इस शोषण को !
बना रहा ललकार आज मैं
निज नीरव रोदन को !

नतमस्तक हलधर ने देखा
मस्तक आज उठाकर—
क्रान्ति-चक्र ही काट—
सकेगा शोषण-पाश प्रबलतर !

शान्ति-पथ का पथिक
नहीं था कोई मुझसे बढ़कर !
आज क्रान्ति-पथ-अवलम्बन
शोषण का अन्तिम उत्तर !

८/१०/४८

किसान से

गूँज रही बार-बार
दश-प्रतिशत की पुकार !

(१)
त्राहि-त्राहि मची आज।
चीख रहे नेतागण,
कहते हैं राज्यपुरुष,
कहते हैं कलाकार,
वैज्ञानिक, विद्याधर—
सङ्कट सन्मुख महान !
दश-प्रतिशत और बढ़ा
अन्न की उपज, किसान !
दे सब को प्राण-दान,
भूखों को अन्न-दान !
और अधिक श्रम कर तू,
और अधिक मर-खप तू !
दश-प्रतिशत कमी मिटा,
उपज बढ़ा, उपज बढ़ा !

किसान से

गूँज रही बार-बार
दश-प्रतिशत की पुकार !

(२)

दिल्ली में हलचल है,
बँगलों में खेत जुते,
प्रतिदिन हैं निकल रहे
अख़बारों में बयान !
खाते हैं शकरकन्द
वे नेता, वे शासक,
वेतन में जिनके हैं
चार अङ्क,
मोटर से चिर-मुखरित राज-पन्थ !
'उपजाओ अधिक अन्न'—
आन्दोलन छेड़ वृहत्
लाखों का ख़र्च किया ।
तू अक्षर-शून्य रहा,
पढ़ न सका परचे वे !

गूँज रही बार-बार
दश-प्रतिशत की पुकार !

(३)

किन्तु, तू न श्रवण-शून्य !
आते हैं गाँव-गाँव,
अब लेकर जीप कार,
नेतागण शुभ्रवसन ।
सुना-सुना बिजली के
भोंपू से ध्वनि बुलन्द,
कहते हैं बार-बार—
"हे किसान, हे उदार !

भूखों मत मरने दो
अपना प्रिय देश, उठो !
भिड़ जाओ, जुट जाओ,
उपजाओ अधिक अन्न !
बहुत नहीं, थोड़ी-सी
करनी है पूर्त्ति और !"
गूँज रही बार-बार
दश-प्रतिशत की पुकार !

(४)

दश-प्रतिशत कमी यही
जड़ सारे सङ्कट की,
कारण है यही प्रमुख
देश की अधोगति का !
इसीलिए रुकी पड़ी
जनता की उन्नति की
योजना सहस्रविधा ।
इसीलिए भूखा है,
नङ्गा है, रोगी है,
गृह-विहीन, अपढ़, दुखी
खुद तू भी, ओ किसान !
इसीलिए घोर कष्ट,
छाए हैं विपदा के
बादल घिर इस भू पर !
युद्ध-सी विचित्र दशा !
सङ्कट चहुँ-ओर व्याप्त !

(५)

खाने को अन्न न हो,
बच्चों को दूध न हो,

गृहिणी को वस्त्र न हो,
वर्षा में घर न मिले,
तेल न हो, नमक न हो,
बीज न हो, भूमि न हो,
हल अलभ्य, बैल न हो,
तो भी, तू किसी भाँति
दश-प्रतिशत कमी मिटा !
मुख कर ले बन्द और
हाथ चला, पैर चला !
उपजा दे अधिक अन्न !
देशभक्त, जुट जा तू !
जनता के प्राण बचा !
ओ उदार, ओ महान !
ओ त्यागी, ओ किसान !

(६)

तेरे ही सेवक ये
तेरी ही चिन्ता में
लगे हुए अहोरात्रि !
काँटों का ताज पहन
योजना बनाते हैं,
लिखते हैं लेख अमित,
देते व्याख्यान नित्य,
आर्डिनेन्स गढ़ते हैं।
व्याप्त घोर आकुलता,
चिन्ता है इन सब के
बँगलों में, दफ़्तरों में,
मोटरों, सभाओं में,
क्लबों, पुस्तकालयों में,
वायुयान—रेलों में !

शासक ये चाह रहे
तेरा सहयोग पूर्ण !

गूँज रही बार-बार
दश-प्रतिशत की पुकार !
१/८/४९

ज्योति-कण

दो दीपावलियाँ

१

दीपावलि के मिस चमकाता
तू अपना चिर-सञ्चित सोना ;
रूप-राशि से सज्जित करता
स्वर्ण-सदन का कोना-कोना !

पर, इसमें तेरे अन्तर का
दैन्य रूप निज दिखलाता है ;
चारों ओर असुन्दरता का
सागर मानो लहराता है !

तेरा जग वह नहीं कि जिसमें
कपट नहीं, सन्देह नहीं है ;
प्रासादों पर दीप जले, पर,
उर-प्रदीप में स्नेह नहीं है ।

प्रति-पल अपने ही वैभव के
जटिल जाल में तू फँसता है;
तेरा जग है अन्तर्-विष से
जर्जर, ऊपर से हँसता है ।

२

मेरी साधनहीन कुटी में
एक दीप की दीपावलि है;
आदर्शों के ज्योति-पुञ्ज को
यह मानव की श्रद्धाञ्जलि है ।

जो कुछ है, है सहज, प्रकट है,
इसमें द्वैधाचार नहीं है;
अस्वाभाविक यत्न नहीं है,
आडम्बर का भार नहीं है ।

मेरे कारण बुझा किसी का
गृह-प्रदीप, यह याद नहीं है ।
श्रम ने मेरी नयन-ज्योति ली,
इसका मुझे विषाद नहीं है ।

लज्जा अथवा गर्व नहीं रस
सुखा सका मेरे जीवन का;
हृदय-स्नेह से स्निग्ध प्रज्ज्वलित
लघु प्रदीप मेरे आँगन का ।

१६/१०/४८

अनुभूति

तेरे जीवन की सुगन्ध जो
सरल हृदय की निर्मलता है,
उससे सहज-सुवासित जग का
मानो हर तरु, सुमन, लता है !

रूप असीम विश्व का सारा
फैला है जितना कण-कण पर,
तेरे मृदु, लघु रङ्ग, रूप,
रेखाओं पर है वह सब निर्भर !

तेरे प्राणों का स्वर-स्पन्दन
जग की स्वर-लहरी का कम्पन;
तेरी भाव-मयी मुद्रा की
अनुकृति विश्व-नटी का नर्तन !

मैंने तेरी प्राण-ज्योति से
विश्व-ज्योति को ज्योतित पाया;
तेरे उर के स्नेह-दीप की
है जग-दीपावलि पर छाया !

१/११/४८

पथिक और दीपावलि

पथ-पथ, गृह-गृह, पद-पद जग की
दीपावलि भरपूर ;
लक्ष्य-दीप था एक तुम्हारा
उच्च शिखर पर दूर !

रूप और सोने का जग में
था मोहक भाण्डार ;
मुक्त रहे तुम, तुम पर कोई
कर न सका अधिकार !

युग बीते, तुम चलते आए,
बना एक इतिहास,
जिसमें सञ्चित यौवन, आँसू,
व्यथा, वेदना, हास !

आया लक्ष्य समीप, पथिक, अब
आया लक्ष्य समीप ;
केवल पथ के शूल न देखो,
देखो गिरि का दीप !

पथिक और दीपावलि

जब पतङ्ग खिंचकर प्रकाश से
उड़ता उसकी ओर,
पथ की दूरी देख न पाता
होकर ज्योति-विभोर ।

प्रति-पद तुम्हें लिए जाता है
अथक लक्ष्य के पास;
विस्मृत होगी व्यथा बीच की,
अमर अन्त का हास ।

जीवन के अथ से जीवन का
मिले चरम उत्थान,
और मध्य की बाधा की
कटुता का हो अवसान !

तुमको ईर्ष्या हुई न जग की
जगमग देख अपार;
लक्ष्य-दीप का स्नेह तुम्हारा
पावे जग का प्यार !

५/११/४८

कला-प्रकृति-दर्शन

कलाकार से

तुम प्रकाश के स्रोत नित्य-नव,
प्रतिनिधि संस्कृति के, जीवन के;
प्रगति-पदों के मार्ग-प्रदर्शक,
प्रेरक हो जग के यौवन के !

कला तुम्हारी शिथिल अनुसरण
या पिछड़ा जय-नाद नहीं है;
भोगवाद, सन्तोष, निराशा,
श्रान्ति, पलायनवाद नहीं है।

कला अग्रगति, इसके पीछे
हर युग में सब जग चलता है;
चिर-जाग्रत इसके अन्तर् में
दीप साधना का जलता है।

प्राणों के तन्मय अणु-अणु के
रक्त-रङ्ग का यह अङ्कन है;
यह वाणी है उस अनुभव की,
जिसका बल बलि है, जीवन है।

भीरु हृदय का सृजन नहीं यह,
जो केवल इतिहास लिखेगा;
वर्तमान कटु सत्यों से बच,
भावी स्वप्न-विलास लिखेगा;

जो केवल निर्झर, मलयानिल,
पुष्प और आकाश लिखेगा;
मानवता के सङ्घर्षों को छोड़,
शून्य उच्छ्वास लिखेगा ।

कला हृदय के अनुभव-रस के
स्वर का बलि-पथ पर कम्पन है,
चिन्तन, जीवन और वेदना,
तीनों का यह अमर मिलन है ।

जो युग-युग का श्वास, क्यों न वह
अपने युग का श्वास बनेगा ?
जो भावी विश्वास, क्यों न वह
वर्तमान विश्वास बनेगा ?

युगनायक, प्रतिभा-विभूतिमय,
तुम न कठिन पथ अपना छोड़ो;
सस्ती तृप्ति प्राप्त करने की
दुर्बलता से तुम मुख मोड़ो !

तोड़ो मोह-शृङ्खला, छोड़ो
मिथ्या-स्वप्न-सृष्टि का चित्रण;
जग-मन की जागरण-ज्योति में
करो सत्य का उज्ज्वल दर्शन ।

कलाकार से

सार्थकता अपने जीवन की
जग के नवजीवन में पाओ;
कलाकार, अपने प्राणों में
मानवता के प्राण जगाओ !

कोटि-कोटि कण्ठों की वाणी,
अगणित हृदयों की अभिलाषा,
युग के बलिदानों की गरिमा,
सङ्घर्षान्वित साम्य-पिपासा !

ये सब तुमसे अमर बनें, हो
तुम्हें इन्होंने अमर बनाया;
इन सबपर हो छाप तुम्हारी,
इन सबकी तुमपर हो छाया !

तुम इनके, ये बनें तुम्हारी
प्रेरक, जीवन-ज्योति जगाओ;
अपने युग के प्राणपुञ्ज बन,
युग-युग के गौरव बन जाओ ।

जब जग निज सर्वस्व चाहता
अग्नि-परीक्षा में हो डाला,
जला चाहती हो धू-धू कर
महाक्रान्ति की भीषण ज्वाला,

संस्कृति, जीवन, आदर्शों पर
ध्वंस - आपदा बरस रही हो,
दृढ़ता, तेज, शक्ति के स्वर को
जब मानवता तरस रही हो,

मिथ्या, जीर्ण कल्पनाओं से
क्या तब तुम खिलवाड़ करोगे;
क्या निर्जीव क्षुद्र शब्दों से
दुर्बल मन की सृष्टि भरोगे ?

युग-प्रतिनिधि, अपने प्राणों में
विश्व-वेदना भरकर गाओ;
तुम जनता-मय, मानवता-मय,
जग-मय, जीवन-मय हो जाओ !

उर-उर में जो एक वेदना,
प्राण-प्राण में एक व्यथा है,
असन्तोष है, प्यास साम्य की,
जो अभाव की एक कथा है,

उससे अपना हृदय अछूता
रख कैसे तुम जी पाओगे ?
क्रान्ति-तथा-नवरचना-पथ पर
कैसे पीछे रह जाओगे ?

१८/३/४४

चाँदनी

अमित विप्लव विश्व में
अबतक हुए उद्भ्रान्त,
चाँदनी, तू आज भी
है शुभ्र, शीतल, शान्त!

जब धरा को अग्नि-गिरि
करता अचानक ध्वस्त,
फेरती तू अमृत-सा
उसपर वरद निज हस्त।

युद्ध-शर का मनुजता के
वक्ष में व्रण देख,
बरसती तेरे दृगों की
विमल करुणा-रेख।

ताजमहलों से कुटीरों
तक समस्त समान
पा रहे कण-कण सुशीतल—
शुभ्र तेरा दान।

स्नेह की प्रतिमा, अनिन्दित
रूप की तू खान,
ज्ञात तुझको दान है,
अज्ञात तुझको मान।

स्वेद के कण पोंछकर
जब कृषक गाते गान,
श्रमिक जब निश्चिन्त निशि में
छेड़ते मधु-तान,

उन स्वरों की माधुरी से
स्नात तेरे प्राण
फैल जाते विश्व पर
बन प्रकृति की मुसकान।

सरलता मानव-हृदय की
ग्रहण कर निष्पाप
छोड़ती है तू जगत् पर
शुभ्र अपनी छाप।

सुमन, शव, मरु, सुन्दरी,
सबपर बिना सन्देह
बरसता है विमल तेरा
एक ही सा स्नेह!

मर्त्य-जग की शुभ्रवसना
अप्सरा अनुरक्त,
विश्व पर तू मुग्ध है,
यह विश्व तेरा भक्त!

चाँदनी

श्रान्त होता जब परिश्रम
कर मनुज अविराम,
प्राण तुझमें डूब पाते
निष्कपट विश्राम ।

निमिर में भी दीखता
भावी प्रभामय वेश;
अमिट आशावाद तू,
उत्साह का सन्देश !

नाव नद के वक्ष पर
तेरी विभा में शान्त
वह चले, देकर चुनौती
स्वर्ग को, एकान्त !

विश्व-चिन्तन मुड़ चले
उस शुभ्र छवि की ओर,
प्राण उस आनन्द से
हो जायँ मुक्ति-विभोर !

मानवों में छिड़ रहे हैं
आपसी सङ्घर्ष;
उठ गए जग से मधुरता,
स्नेह, ममता, हर्ष !

जब इससे चाहते हैं
जो मनुष्य विराम,
अङ्क में भर तू उन्हें
देती, शुभे, विश्राम !

१५/११/४८

मानव-मन

साथी ! समझो मानव-मन को !

(१)

बाहर जैसा विस्तृत जग है,
पग-पग पर जैसी उलझन है,
कण-कण का अपना जीवन है,
और समस्या विविध गहन है,

भीतर भी वैसा ही सब है,
बहिर्जगत्-सा अन्तर्जग है,
नभ, गिरि, सुमन, सुगन्ध वहाँ भी,
वन, पथ, रवि है, शशि है, खग है !

देखो इस अन्तर्जीवन को !
साथी ! समझो मानव-मन को !

(२)

लौह-दण्ड ले सेना आए,
मन का ताला खोल न पाए;
मन तो मन ही का अभ्यासी,
मन को पा सर्वस्व लुटाए !

कितने सूक्ष्म तन्तु हैं मन में,
मन का जग है कितना कोमल !
पर, जब मन निश्चय पर दृढ़ हो,
मन से नहीं कठोर हिमाचल !

सुलझाओ इसकी उलझन को !
साथी ! समझो मानव-मन को !

(३)

ज्वालागिरि पर बैठ सुमन-सा
स्मित बरसाने वाले नेता,
जय पर लज्जा अनुभव कर भी
दर्प दिखाने वाले जेता,

स्वागत-गान कण्ठ में जिनके,
हृदय द्वेष के विष से जर्जर,
गौरव-शिखरासीन, किन्तु, फिर भी,
उन्मन, ऐसे अगणित नर

गूढ़ पहेली हैं जन-जन को !
साथी ! समझो मानव-मन को !

(४)

भाला प्रतिक्षण भला नहीं है,
बुरा नहीं है बुरा जन्म-भर,
बड़ा सदा ही बाड़ नहीं है,
छोटा छोटा नहीं निरन्तर;

गुरुता - लघुता - गुण - दोषों का
एक पात्र में जो सम्मिश्रण,
दुर्बलता से और शक्ति से
गुँथा हुआ जो, वह मानव-मन !

गिरि से लघु न कहो रजकण को !
साथी ! समझो मानव-मन को !

१/११/४८

कारा की दीवारों में

[अगस्त ४२ की क्रान्ति के बाद जेलों में लिखित]

क़ैदी और क्रान्ति

इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे !

(१)

तुम यहाँ बसा बैठे अपना
छलना के सपने-सा जीवन,
पर, यह मञ्ज़िल का अन्त नहीं,
यह तो पथ का पहला बन्धन;

इस कारागृह के बन्धन में
उर के अपूर्ण अरमान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे ।

(२)

विप्लव की आग धधकती है,
जनता सर्वस्वाहुति देती;
बन्दी ! दीवारों के बाहर
जन-क्रान्ति हिलोरें है लेती।

विद्रोह नहीं है क्षुद्र खेल,
उसमें अगणित बलिदान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे।

(३)

देखे तुमने माँ के आँसू,
अनुभव की आहें नारी की,
शिशुओं की सिसकी सुनी,
समझ चुके—पूरी तैयारी की।

इस त्याग-दम्भ में युग-युग के
सञ्चित उर के अभिमान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे।

(४)

विद्रोही ! खर्व हुए कितने,
तुम, आकर, केवल बन्दी बन,
वे उधर तुम्हारे पथ पर चल
हैं चढ़ा रहे हँस-हँस जीवन;

देते हैं रक्त और मस्तक,
फिर भी उनके यश-गान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे।

(५)

दी विदा, तुम्हारी जय बोली,
फिर, जूझ पड़े समराङ्गण में,
कर में सिर लेकर, वे लाखों,
हैं मरण न्योतते क्षण-क्षण में।

इस कारागृह के जीवन के
पीछे वे जीवन-दान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे।

(६)

फिर एक बार उस पार तुम्हें
यदि बिछुड़े साथी पा लेते,
तुम भी मिल उनके साथ वहाँ
अपने प्राणों की बलि देते।

पर, इन दीवारों के पीछे
अब वे प्रेरक प्रस्थान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे।

(७)

मानव है तृण से तुच्छ कभी,
हिमगिरि से मनुज महान कभी,
है इसमें दृढ़ता, शक्ति कभी,
यह दुर्बलता की खान कभी;

मानव-उर है रहस्य, इसमें
हैं अगणित पतनोत्थान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे।

(८)

पहली रण-भेरी बजा बने
तुम बन्दी इन प्राचीरों के,
इस गौरव से तुम सधे रहो,
आदर्श बनो बलि-वीरों के;

तप-ज्वाला से दासत्व भस्म हो,
गत युग का अपमान छिपे,
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे ।

(९)

इन दीवारों में, बन्दी, तुम
जनता के तरु के फूल बने;
पीछे से सहने को कुठार
बाहर के साथी मूल बने ।

तुम तेज, शक्ति वे विप्लव की,
उनके उत्सर्ग महान छिपे ।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे ।

(१०)

पा स्पर्श पवन के झोंके का,
सुन कभी किसी पक्षी का स्वर,
जब आता तुमको याद कभी
स्वच्छन्द भ्रमण या अपना घर,

तब उठती है उर में पुकार—
अब यह ममता का भान छिपे।
इस सरल हास-मय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे ।

(११)

मानवता का इतिहास रक्त से
रँग जिसने निज कोष भरा,
शोषण से उस साम्राज्यवाद के,
मुक्त देश की रहे धरा,

इस एक साधना में भविष्य के
सारे सुख - सम्मान छिपे ।
इस सरल हासमय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे ।

(१२)

बन्दी, स्वतन्त्रता जनता की
महँगी है लाखों प्राणों से ।
निज उर से पूछो— तृप्त हुए
क्या तुम अपने बलिदानों से ?

उत्तर की 'हाँ' में सफल यत्न,
'ना' में व्यङ्ग्यों के बाण छिपे ।
इस सरल हासमय जीवन के
पीछे कितने तूफ़ान छिपे ।

१७/६/४२

दीपक का नवजीवन

स्मृति-अङ्गुलियों पर दिन-दिन, क्षण-क्षण गिन-गिन
मत गत जीवन की करो प्रतीक्षा, साथिन,
जब मैं आश्रित सीमित-ममता-माया का,
था दीप तुम्हारे अञ्चल की छाया का।
मधुमय, मृदु था वह प्रथम चरण जीवन का,
उत्सर्ग क्षुद्र था, पर, उस स्नेह-ग्रहण का।
छाया का दीपक रह न सका मैं तब से,
था तिमिर-नाश का मिला निमन्त्रण जब से।
युग बीते, लघु एकाधिकार वह बीता;
आँगन-सीमा को जग-सीमा ने जीता।
घर के बाहर जब गए ज्योति के लघु कण,
मेरे प्रकाश ने देखा तब विस्मित वन—
देता था मानो उसे चुनौती प्रति-क्षण
जग-प्रगति-निरोधक दारुण कल्मष का वन।
बढ़, पा प्रकाश ने वन-विनाश-आयोजन,
कर दिया दहन-रण-ज्वाला में प्राणार्पण।
ज्वाला होना था श्रेष्ठ दीप होने से,
जिससे वह वन जल उठा एक कोने से।

पर, फिर देखा, वह अग्नि बुझी थक-रुककर;
बन अमिट रहा, नव मिला मुझे रूपान्तर ।
मैं आज नहीं हूँ, देवि, दीप या ज्वाला:
दाहकता मुझ में नहीं, न रहा उजाला ।
तुम बाट देखती होगी निज दीपक की;
मैं हूँ मुट्ठी-भर राख ज्योति-अर्पक की ।
आहत, असफल का भी यह गौरव धारण !
मैं रुद्ध वायु में भी बन का भय-कारण !
मत मिलन-विरह से, दिवसों से, मासों से,
जीवन को नापो, हासों-उच्छ्वासों से !
मत करो सफलता-असफलता की गणना;
सार्थक बलि-पथ का एक पथिक है बनना ।
है छिपी भस्म में मेरी, लघु निधि सारी,
भावी पावक की आशा की चिनगारी ।
दीपक बनने की मुझको चाह नहीं है;
पिछले जीवन का अब उत्साह नहीं है ।
इच्छा है, फिर बन सकूँ कभी मैं ज्वाला;
हो भस्म एक दिन वह कल्मष-बन काला ।
यदि फिर पाओ तुम मुझे, नया व्रत लेना;
आश्रय के बदले मुझे प्रेरणा देना ।
अञ्चल से छाया नहीं, पवन पहुँचाना;
अन्तर् की चिनगारी को प्रखर बनाना ।

१७/५/४३

वर्षागम के पूर्व

प्रथम वृष्टि की नन्ही बूँदों की आशा की कोर
करती है आकर्षित तुमको रह-रह नभ की ओर।
बन्धु, तुम्हारे अधरों की है यह मधु-मृदु मुसकान
उन्नत नयनों की प्रदीप्ति की स्वाभाविक पहचान।
तुम कहते हो—मैं भी देखूँ नभ को आशावान;
मैं कहता हूँ—भू का तप ही देगा भू को त्राण।
तुम देखो नभ की उदारता, ऊपर का वरदान;
नीचे के तप ने खींचा मेरे नयनों का ध्यान।
भूमण्डल के अगणित लघुकण अपराजित दिन-रात
सहते आए अब तक कितने आतप के आघात!
यदि आएगी वृष्टि, न होगी वह नभ का उपहार;
वह तो होगी दीर्घ साधना के फल की रस-धार।
यदि अपूर्ण तप ही पर तुम चाहोगे नभ का दान,
अधिक तप्त असमय वर्षा से होंगे भू के प्राण!
बलिदानों ही की अपूर्णता, कहता है इतिहास,
देती है साधक हृदयों को लक्ष्य-सिद्धि-विश्वास।
सखे, न सोचो— रजकण लघु ये और बड़े अरमान;
निज तप ही के बल पर निर्भर रहने का अभिमान!

वर्षागम के पूर्व

इनसे बढ़कर निज लघुता का और किसे है भान ?
इन्हें ज्ञात है— कष्टसहन ही इनका शक्ति-निधान।
पर, क्या लघुता के अन्तर् में रहे न दृढ़ विश्वास ?
क्या न इन्हें अधिकार— यन्त्रणा में भी रहें स-हास ?
लघुतर, पीड़िततर होने के भय का इन्हें न त्रास;
ये विनम्र, ये मौन, तप्त जीवन में भी सोल्लास !
तुम दर्शक, तुम स्वप्नविहारी, तुम अनन्त में लीन;
क्षुद्र रजकणों में सीमित है, मेरी श्रद्धा दीन।
व्याप्त तुम्हारे नयनों में हरियाली की तसवीर;
सजल भविष्यत् की आशा से ये हैं अधिक अधीर।
कोकिल, मेघ, मयूर, द्रुमों का भावी सरस विलास
तुम्हें देखने कब देता है निज चरणों के पास !
ये हैं, मेरे नयनों से तुम देखो इनकी ओर;
ये लघु रजकण, सहे इन्होंने कितने सङ्कट घोर !
ये धरणी के निर्माता, जिनके हृदयों को चीर
खींच ले गए सब रस रवि के प्रखर करों के तीर।
ध्रुव इनका विश्वास—थकेगा कभी तीव्र उत्ताप;
भूमि सौ गुना रस पा होगी सुखमय अपने-आप।
ये कब नभ के दास, भिखारी, स्वाभिमान से हीन ?
ये तो केवल अपने तप में निष्ठा से लवलीन।
नतमस्तक मैं इन्हें देखता ले श्रद्धा गम्भीर;
इनका ताप माप नीरद का, तप का फल है नीर।
उत्सुक नयन, मलार कण्ठ में, उर में घन का ध्यान;
तुम नभ के हो प्रेम-पुजारी, सजल तुम्हारे प्राण।
इस निदाघ का प्रतिपल तुमको वर्षाशा-सन्देश;
है अज्ञेय-मर्म तुमको यह बलिदानों का देश।
है जीवन की अन्य कसौटी, यहाँ भिन्न है तोल;
शोषण-पीड़न-कष्ट-सहन है यहाँ सिद्धि का मोल।
जब तक तप से द्रवित विवश नभ ले न सघन उच्छ्वास,
यहाँ प्रतीक्षा-उन्मुख होने का किसको अवकाश ?

१३/६/४३

क्रान्ति के, इतिहास के क्षण

[क्रान्ति के सूत्रपात से स्वतन्त्रताप्राप्ति के पूर्व तक लिखित]

अगस्त-क्रान्ति का गीत

दृढ़ निश्चय की हुई घोषणा, गूँज उठा जिससे जग सारा—
'हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा !'

किसके आगे हाथ पसारें, कौन हमें है देनेवाला !
अपनी छिनी हुई आज़ादी भारत ख़ुद ही लेनेवाला !
हमने निज अधिकार-प्राप्ति के प्रण से पशुबल को ललकारा।
हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा !

नर-नारी, बच्चे-बच्चे ने समझा—वह आज़ाद हुआ है।
मुक्ति-भावना से घर-घर में एक नया आह्लाद हुआ है !
मिलने को स्वतन्त्र देशों में हुआ उठ खड़ा भारत प्यारा !
हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा !

दृढ़ निश्चय के बाद हमारे हाथों में अब आज़ादी है !
टूटे बन्धन, मिटी ग़ुलामी, ख़त्म समझ ली बरबादी है !
नई ज़िन्दगी, नया वतन अब, नए विचारों की है धारा !
हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा !

बलिपथ के गीत

हैं छत्तीस करोड़ सिपाही, अन्न-वस्त्र-धन-खान यहाँ हैं,
बलिदानों से आज़ादी की रक्षा के अरमान यहाँ हैं!
कैसे कोई आज़ादी से रख सकता है हमको न्यारा!
हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा!

जग के शासन-तन्त्र निरङ्कुश सारे मिलकर हमें डरावें,
चाहे सब साम्राज्यवाद के पोषक हमको भय दिखलावें!
दोनों के आतङ्क-दमन के बीच 'अभय' हो मन्त्र हमारा!
हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा!

जब तक अन्तिम भारतवासी जीवित बचे आत्म-बलि-रण में
और रक्त का अन्तिम कण हो बाक़ी उसके आहत तन में,
तब तक उसके सुदृढ़ करों में झण्डा रहे राष्ट्र का प्यारा,
हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा।

न्याय, शान्ति, समता, स्वतन्त्रता, बन्धु-भाव का युग लाने को,
होकर मुक्त, विश्व को नूतन जीवन का पथ दिखलाने को,
भारत को बलिदान श्रेष्ठतम करना होगा अपना सारा,
हैं स्वतन्त्र सब भारतवासी, भारतवर्ष स्वतन्त्र हमारा।
१२/८/४२

क्रान्ति-प्रेमी का प्रेम

पीड़ितों से प्यार मेरा।

आज तक कितने हुए उपहार रत्नों से सुसज्जित ;
स्वर्ण से कितने, प्रसूनों से हुए कितने विनिर्मित !
मैं नया प्रेमी, नई है रीति मेरी प्रीति की भी;
हृदय के शोणित-कणों से सिक्त हर उपहार मेरा।
पीड़ितों से प्यार मेरा।

राजमुकुटों की चमक के सामने पलकें न झुकती,
भावनाएँ मुक्ति की हैं राजदण्डों से न रुकती,
आत्मबलि की श्वास से जीता अभय जीवन जहाँ है,
वासना के क्षुद्र जग से है अलग संसार मेरा।
पीड़ितों से प्यार मेरा।

हैं निछावर प्राण उनके हेतु, जो शोषित रहे हैं,
विश्व के आरम्भ से अब तक दलित घोषित रहे हैं;
रक्त, श्रम, सर्वस्व देकर भी सदा पीड़ित रहे हैं।
आह से उनकी मिला प्रत्येक हृदयोद्गार मेरा।
पीड़ितों से प्यार मेरा।

महल नभचुम्बी नहीं ऐश्वर्य का मुझको लुभाता,
आत्मगौरव-उच्चता जब मैं मनुज की देख पाता;
त्याग का जो गिरि खड़ा उर में दिगम्बर साधना के,
नत चरणरज में उसी की भाल बारम्बार मेरा।
पीड़ितों से प्यार मेरा।

जो विलासों का दिखाते रङ्ग केवल क्षणिक-शोभित,
कामना की वाटिका के फूल, वे मेरे न वाञ्छित;
विपत्-शूलों से घिरा हँसता मनुज का उर-कुसुम जो,
स्नेह-सौरभ अमर उसका, है मधुर आधार मेरा।
पीड़ितों से प्यार मेरा।

जीर्ण जग, म्रियमाण युग पर मैं न सुख-आसन बिछाता,
मैं न उस पर बैठ प्रतिगामी, शिथिल वीणा बजाता;
एक नव युग, एक नव जग के सृजन की क्रान्ति का स्वर
गान उर का, गति चरण की, प्यार का अभिसार मेरा।
पीड़ितों से प्यार मेरा।

आज प्रिय मेरे करोड़ों, क्रान्ति की ये वाहिनी हैं;
आत्मजायत हो उठें यदि, शक्ति सर्वग्राहिणी हैं!
जागरण इनका, मिलन-त्यौहार मेरा भी वही हो;
एक वह क्षण लक्ष्य मेरा, साधना का सार मेरा।
पीड़ितों से प्यार मेरा।

प्रेमपथ के विघ्न पथिकों को न विचलित कर सके हैं;
आग उर में जब लगी, तब, कब रुके हैं, कब थके हैं?
पूछता प्रत्येक पशुबल से—"बचा अब अस्त्र क्या है?
शृङ्खला तो बन चुकी कब की हृदय का हार मेरा!"
पीड़ितों से प्यार मेरा।

८/१/४४

विद्रोही

चिह्न नहीं मेरी मञ्ज़िल का अभी दिखाई देता है;
ज्वालामुखी क्रान्ति का उर में अभी हिलोरें लेता है।

श्रमिकों-कृषकों ने न अभी तक है असली सत्ता पाई;
उनके चिर-वञ्चित जीवन में है न अभी मधुऋतु आई!

तुम कहते हो उस चिरकाङ्क्षित आज़ादी का सार यही!
गृह गृह में अभाव, जन-जन पर बन्धन वही, प्रहार वही!

कोटि-कोटि मानव वञ्चित हैं मानवता-अधिकारों से;
बज उठती है दैन्य-शृङ्खला अब भी जयजयकारों से!

साथ चले, सङ्घर्ष किया मिल; कटी जवानी कारा में;
दो विभिन्न उपधाराएँ अब हो लें जीवन-धारा में!

शोषक-दल को आश्वासन! क्या यही समर की हुङ्कारें!
क्या बलि-पथ के गीत यही हैं, ये विप्लव की ललकारें!

तुम्हें समझने का मैंने जो पैमाना था ठहराया,
कुण्ठित वह; अपने को मैंने पथ पर एकाकी पाया!

तीव्र, विवादी स्वर सरगम का, मैं उन्मन, निर्मोही हूँ!
साथी, लो विराम, सत्ता तुम, मैं अब भी विद्रोही हूँ!

४/१०/४६

विप्लव और विधान

क़ाफ़िले की यह थकावट, यह न मंज़िल !
लक्ष्य के पहुँचे अभी न समीप, साथी !
क्रान्ति के ज्वालामुखी को ढाँक तुमने
क्षुद्र सत्ता के जलाए दीप, साथी !

तुम बड़े थे, पर, न चाहो मूढ़ श्रद्धा,
इस रुकावट पर न तुम सम्मान माँगो ;
जाँच निष्ठा की करो सङ्घर्ष-पथ पर,
प्राण का, सर्वस्व का बलिदान माँगो !

रक्त-कण थे नाचते सुन नाद जिसका,
हाथ में वह आज रण-भेरी नहीं है ;
बैठ माया के महल में कह रहे हो—
'लक्ष्य की अब प्राप्ति में देरी नहीं है !'

राष्ट्र का तारुण्य विप्लव चाहता था,
एक इङ्गित कूच का अन्तिम तुम्हारा !
एक ही आघात में शोषक-दलों की
कुटिलता का जाल होता छिन्न सारा !

विप्लव और विधान

सन्धिका पथ चुन लिया तुमने अधूरा,
पीड़ितों का सुनो हाहाकार, साथी !
उठ रहा तूफ़ान प्राणों में भले ही,
पी रहे विष, मौन, हो लाचार, साथी !

फिर उठो, फिर क्रान्ति की ज्वाला जलाओ
छोड़ यह पथ 'दान' और 'विधान' का तुम ;
राष्ट्र का इतिहास फिर उज्ज्वल बनाओ
स्वत्व का, सङ्घर्ष का, बलिदान का तुम !

२४/१०/४६

तरुण के प्रति

तरुण, तुझ पर भार गुरुतर !

(१)

शिशु नए अङ्कुर, न उनमें ध्वंस या निर्माण का बल,
शक्ति कल की, पर, अभी है क्षेत्र सीमित मातृ-अञ्चल,
वृद्ध जीर्ण प्रतीक पतझड़ के, विरस उपदेश केवल,
विफल सत्ता-मोह, निष्क्रिय, किन्तु, आदर-दान के स्थल,
विश्व तेरा पथ-प्रतीक्षक, राष्ट्र तेरा प्राण-सहचर !
तरुण, तुझ पर भार गुरुतर !

(२)

तू सरल शोणित, हृदय का रक्त दे बलि-पथ बनाया,
रह स्वयं पीछे, किसी को, बोल जय, आगे बढ़ाया !
आखिरी सङ्घर्ष का आघात-क्षण जब पास आया,
बेबसी का, सन्धि का नेतृत्व से सङ्केत पाया !
क्षुब्ध तू, अब व्याप्त तेरे प्राण में विद्रोह का स्वर !
तरुण, तुझ पर भार गुरुतर !

(३)

है तुझे ज्वाला जलानी क्रान्ति की फिर एक भीषण,
भस्म हों जिससे विषमता के बचे अन्तिम घृणित कण।
अन्य दें तुझको अवधि ! क्यों यह चुनौती सहे यौवन।
तू स्पर्ष सङ्घर्ष से उनका नियत कर आख़िरी क्षण !
मुक्त यश-पद-मोह से, नव क्रान्ति का नेतृत्व तू कर !
तरुण, तुझ पर भार गुरुतर !

(४)

कोटि-कोटि श्रमी जनों को है तुझे सत्ता दिलानी
और समता-दीप्ति से है मनुजता उनकी खिलानी,
मर रही है लोक-संस्कृति, प्राण-रस से वह जिलानी,
श्रेणियों में बँट रही जगती, तुझे वह है मिलानी !
इसलिए, मज़बूत क़दमों से बढ़ा चल क्रान्ति-पथ पर !
तरुण, तुझ पर भार गुरुतर !

(५)

प्रेयसी का प्यार पीछे, स्वप्न का संसार पीछे,
विविध रङ्गों के सजीले विश्व की मनुहार पीछे,
प्यास पीछे, हास पीछे, विरह-विकल पुकार पीछे,
गीत पीछे, चित्र पीछे, साधना का सार पीछे !
सामने सङ्घर्ष का पथ आज तेरे है प्रखरतर !
तरुण, तुझ पर भार गुरुतर !

(६)

क्रान्ति होते ही सफल, निर्माण-क्रम अभिराम तेरा,
जीर्ण जग के नाश पर नव जग बनाना काम तेरा !
प्रलय से बढ़कर सृजन में श्रम लगे अविराम तेरा !
मनुजता फूले-फले; इतिहास भूले नाम तेरा !
विश्व तू नूतन बनाता जा, स्वयं अज्ञात रहकर !
तरुण, तुझपर भार गुरुतर !

७/३/४७

दिल्ली में हलचल क्या है ?

बोल उठे शोषित श्रमजीवी
अब विलंब की वाणी में,
इन्क़लाब का जोश जगा है
युग की नई जवानी में ।

मुकुट हिले, सिंहासन दहले,
स्वर्णकोष निष्प्राण हुए ।
मिट्टी में जो मिले हुए थे,
वे मानव बलवान हुए ।

महलों के विलास के सपनों के
गढ़ चकनाचूर हुए;
बाधाओं के शिलाखण्ड ये
क्रान्ति-पन्थ से दूर हुए;

सदियों की वञ्चित जनता ने
देखा— नवयुग आया है ।
दलित मनुजता के उठने का
अवसर विलंब लाया है ।

दिल्ली में हलचल क्या है

कहा क्रान्ति के सेनानी ने —
यह क्षण चूक नहीं जाना;
लक्ष्य भूलना नहीं, वज्र-सी
दृढ़ता इस पर दिखलाना।

यह क्षण नहीं क्षुद्र सत्ता के
बन्धन में बँध जाने का,
बीच पन्थ में क्रान्ति-सैनिकों के
थककर सुसताने का।

यह क्षण है अन्तिम प्रहार का,
चरम लक्ष्य के पाने का,
'आज़ादी, समता' का झण्डा
सर्वोपरि फहराने का।

कोटि-कोटि जन पूछ रहे हैं —
दिल्ली में हलचल क्या है?
सन्धि-पत्र या मुक्ति हमारी?
महाक्रान्ति का फल क्या है?

१५/५/४७

दासता की वेदना के स्वर

[परतन्त्रता-पाश में बद्ध भारत की व्यथा के क्षणों में लिखित]

परतन्त्रों का आत्मनिरीक्षण

वर्तमान के सङ्घर्षों से अलग, समस्याओं से न्यारे,
हम अतीत-पूजक चलते हैं जीवन-पथ के एक किनारे।
आज अन्नपूर्णा माता के आँगन में, आँखों के आगे,
अन्नकणों के बिना तड़पकर मरते उसके पुत्र अभागे।

क्षुधा, अभाव, मरण के साक्षी, मूक और असहाय,
हम, सह-मानव, देख और सुन ही सकते निरुपाय !
निष्क्रियता, असहानुभूति की यह तमसावृत रात
क्या अतीत-पूजा के तारों से होगी अवदात ?

अपने युग की घोर उपेक्षा, यह कलङ्क की बात हमारी !
यह थाती इतिहास-सूत्र से पाएँगे उत्तराधिकारी !
भूत-काल की सुलभ अर्चना ! वह तो हम करते जाएँगे !
पर, भावी युग के मानव से श्रद्धा यों कैसे पाएँगे ?

गत गण-तन्त्रों के नायक की पूजा के सब साज !
वर्तमान जन-गण के नायक कारागृह में आज !
असफल, दास, पराजित जनता, राष्ट्र-तेज है मन्द !
व्यंग्य हमारी मानवता पर हर उत्सव-आनन्द !

पशुता की ठोकर का लाञ्छन पूजा का उपचार हुआ है,
मन्दिर कारागार, प्रार्थना बन्धन-हाहाकार हुआ है,
अपमानित-जनपद-मर्माहत-स्वाभिमान वरदान हुआ है !
इसी वेदना, व्यथा, व्यंग्य से प्रेरित कवि का गान हुआ है ।

अशिव, असत्य, असुन्दर से जो करता है विद्रोह,
जो भय से है मुक्त, प्रलोभन का है जिसे न मोह,
जिसकी युग-वाणी करती निज युग की व्यक्त पुकार,
कलाकार अमरत्व कला में करता वह सञ्चार ।

सामूहिक लज्जा, अभाव की, तिल-तिल कर शोषित होने की,
यह पुकार है अपमानों की, क्षुधा, दासता की, रोने की,
गिरने, उठने, पुनः पराजय की शर-शय्या पर सोने की,
यह पुकार है सङ्घर्षों की, बलिपथ पर प्रस्तुत होने की ।

कवि को लगता इसी वेदना से पूरित संसार,
आज करुणतम उर-वीणा की भी यह है झङ्कार ;
इसी व्यथा में मग्न हृदय का अब हर भाव, विचार,
भक्ति, प्रकृति-सौन्दर्य, प्रेम-रस, मृदु करुणा, शृङ्गार ।

यदि हम निर्धन ही होते, तो केवल श्रद्धा लेकर आते,
गण-नायक की स्मृति-पूजा में केवल भाव-प्रसून चढ़ाते ;
पर, दासत्व-जड़ित जन हम क्या मुक्ति-देव को भेंट चढ़ावें ?
क्या कायरता, कल्मष, लज्जा, लाञ्छन लेकर आगे आवें ?

३/६/४३

परतन्त्र भारत की आत्मग्लानि

मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।
एक महान राष्ट्र का शव हूँ,
आधा जीवित; आधा मृत हूँ;
आहत अगणित अघातों से,
छिन्न-भिन्न हूँ, क्षत-विक्षत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

मैं रोता हूँ, मैं हँसता हूँ,
मैं रुकता हूँ, मैं चलता हूँ;
स्रोत अनन्त शक्ति के मुझ में,
फिर भी, मैं तिल-तिल गलता हूँ।
निज अतीत वैभव पर गर्वित,
मैं श्मशानवत् हूँ, श्रीहत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

शस्यश्यामला, रत्नगर्भ भू,
अगणित खानें, विस्तृत सागर,
मेरे वन, मेरी सरिताएँ,
मेरा हिमगिरि, मेरा अम्बर !
क्षुधा-रोग-दारिद्र्य-अग्नि में,
फिर भी, मैं जलता अविरत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

युग-युग की साहित्य साधना,
संस्कृति, कला, ज्ञान, तप, दर्शन !
इनके साथ, अन्न के जूठे
कण-कण पर लड़ मरने के क्षण !
श्रद्धा और दया का भाजन,
मैं उन्नत हूँ, मैं अवनत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

मैं चालीस कोटि का जनपद,
मैं असंख्य धन का अधिकारी;
क्षुद्र कीट की भाँति, किन्तु, मैं
पर-इङ्गित का कृपा-भिखारी !
जीवन के इस तीव्र व्यंग्य के
दंशन से मैं मर्माहत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

गौरव-स्मृति का मुकुट भाल पर
मेरे है इतिहास चढ़ाता;
पर, दासत्व-बद्ध मैं अपना
चिन्तन, कथन, आचरण पाता।
गौरव और विवशता के इस
द्वन्द्व-जाल से मैं आवृत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

परतन्त्र भारत की आत्मग्लानि

जो मेरे सुत जग-रण-पथ की
शौर्य-तेज-किरणें कहलाते,
दमन-प्रहार-भीति से मेरे
आँगन में कुण्ठित हो जाते।
जग के बन्धन चले तोड़ने,
मैं बन्धन-लज्जा से नत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

राष्ट्र-शक्तियों की गणना में
मेरा नाम-निशान नहीं है,
भावी जग की नव-रचना में
मेरा कोई स्थान नहीं है;
फिर भी, रक्त-अश्रु-श्रमकण-बलि
देने वाला मैं शाश्वत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

बलिदानों के बदले मैंने
अपमानों को गले लगाया;
साक्षी है इतिहास, आज तक,
क्या-क्या देकर क्या-क्या पाया!
कितनी करुण विवशता है यह,
मैं फिर पर-हित को उद्यत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

यत्न अनेक मुक्ति के अपनी
मैं अब तक कर-करके हारा,
मिली पराजय, व्यथा, विफलता,
दण्ड, यातना, सङ्कट, कारा!
लज्जा, आत्म-ग्लानि से प्रतिपल
मैं अन्तर्-तम में आहत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

घृणित स्वार्थ का विष फैलाकर
मेरी सन्तति की नस-नस में,
मेरे शोषक रखे हुए हैं
मुझे उसी के द्वारा वश में।
इस कलङ्क, इस दुर्बलता के
कारण पराधीन सन्तत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

एक विराट स्वप्न जीवन का,
चित्र कभी जो मैंने देखा,
बिखर गया अब, रङ्ग म्लान सब,
नष्ट हो गई रेखा-रेखा!
असफलता के खँडहर का मैं
धूलि-धूसरित शरणागत हूँ।
मैं भारत हूँ, मैं भारत हूँ।

३/१०/४३

विश्वयुद्ध-सैनिक भारत में

ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण !

(१)

ये प्रतिनिधि यान्त्रिक संस्कृति के,
भौतिक, रक्ताक्त सभ्यता के;
ये 'संरक्षक' मानवता के,
ये स्वयंसिद्ध 'जग के त्राता'।
ये दूर-दूर के देशों में
अधिकार-भावना-युक्त अतिथि।
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(२)

इनको गौराङ्ग बना विधि ने
सौंपा विशेष कर्तव्य-भार,
युग-युग से उसी प्रेरणा से
सुनते आए आह्वान विकल —
ये कितने अवनत देशों का
करते आए उपकार सदय।
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(३)

माता, पुत्री, भगिनी, पत्नी
बनकर नारीत्व खड़ा पथ पर,
इनके भी सम्मुख स्निग्ध-हृदय
था अश्रु बहाता ममता के;
पर, साधिकार जग-रक्षा-व्रत
लेकर चल पड़े स्व-गृह से ये।
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(४)

काले शिशुओं के कौतुक के,
कौतूहल के ये विषय नवल,
ग्रामीण सरलता इन्हें देख
भौचक रह जाती है पथ पर।
इनकी मुख-मुद्रा मौन; मौन में—
शक्ति, गर्व, अन्तर, महत्त्व।
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(५)

जेबों में दोनों हाथ डाल,
मृदु-मधुर बजा सीटी मुख से,
निश्चिन्त भाव से एकाकी
आमोद-मार्ग की ओर कभी
चलते देखे जाते, धूमिल—
सन्ध्या-दीपों की छाया में,
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(६)

टीलों-से बृहत् यान ले-ले,
ये एक-एक, दो-दो बढ़ते
तूफ़ानी गति से मनमाने
मार्गों पर; काले नर-नारी

हैं धूलि-पुञ्ज से ढँक जाते
दाएँ, बाएँ, आगे, पीछे।
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(७)

यदि हों छोटे बलिदान, उच्च
लक्ष्यों के हित, परवा क्या है?
यदि पथ के कुछ पशु या मानव
कुचलें इनके द्रुत यान कभी,
अज्ञात रूप से कृत यह त्रुटि
गोरों की काले क्यों न सहें?
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(८)

गोरों के शिष्य युगों के हैं,
फिर भी, सारे अकुशल, निर्बल,
बस पाक-निपुण, सेवातत्पर,
सत्कार अतिथियों का सीखे,
अब तक असमर्थ स्वरक्षा में,
केवल अभ्यस्त दास काले।
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(९)

जड़बुद्धि कृष्ण-वर्णों पर भी
अक्षय है गोरी अनुकम्पा।
कितने श्रम से सिखलाए हैं
विज्ञान, कला, कौशल इनको,
पिछली कृतघ्नता, असफलता
सब भूल, बने इनके रक्षक
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण।

(१०)

कितने भूखों, बेकारों की —
रोटियाँ चलाने ये आए!

हँस-हँस कहते ताँगे वाले —
"दे रहे एक के चार-चार" !
हैं इनकी पद-रज के प्रसाद
पद-पद पर नव-नव चाय-भवन !
ये श्वेत-वर्ण, ये रक्त-वर्ण !

(११)

कुछ नङ्ग-धड़ङ्गों को इनमें
करते जब देखा अर्ध-स्नान,
कुछ राहगीर सकुचाए, पर,
कुछ काले पहलवान बोले —
"गोरे कैसे तगड़े पट्ठे !
करते हैं कसरत खास, नई !"
ये श्वेत-वर्ण ! ये रक्त-वर्ण !

(१२)

दिल-जले एक थे फटे-हाल,
कुछ कुढ़े हुए-से वह बोले —
"खाते हैं सेरों फन, मक्खन,
अण्डे दिन में ये सात बार !"
तब कुछ विज्ञों ने समझाया —
"आए भी तो हैं दूर, यहाँ,
उपकार हमारा करने को;
देने को हम को अभय-दान" !
ये श्वेत-वर्ण ! ये रक्त वर्ण !

२३/१२/४३

श्रद्धा—सुमन

नेताजी सुभाष की स्मृति

छूट चुके हैं नीचे दल-गत
राजनीति के धूमिल बादल,
ऊपर स्वच्छ राष्ट्र-उर-नभ के
हो तुम शुभ नक्षत्र समुज्ज्वल !

साथी सत्तासीन हुए, तुम
इस पर हर्षित होगे मन से,
स्वयं तृप्त होगे केवल
जन-जन के श्रद्धा-स्नेह-सुमन से !

सारा जीवन रहा रागिनी
त्याग, तेज, तप, आत्म-दान की !
साहस के प्रतीक, तुम विद्युत्
बने राष्ट्र के महा-यान की !

लाल क़िले पर राष्ट्र-ध्वजा के
फहराए जाने की आशा
सफल तुम्हारी हुई; देश की,
पर, पूरी न हुई अभिलाषा—

तुम्हें ध्वजा के सूत्र खोलते
दिल्ली के गढ़ पर पाने की,
स्नेहालिङ्गन - साध मिटाने,
भुज भर-भर कर अपनाने की !

मुक्ति-पर्व आया था, पर, था
जन-जन के नयनों में पानी !
थी आज़ाद-हिन्द-सेना, पर,
था न वहाँ उसका सेनानी !

आएँगे अनेक अवसर, जब
लक्ष-लक्ष जन कहीं मिलेंगे,
जयघोषों से नभ गूँजेगा,
मुक्ति-हर्ष से हृदय खिलेंगे;

किन्तु, अभाव तुम्हारा प्राणों में
तब गहरा चुभा करेगा;
वह स्मृति का दंशन कण-कण में
एक अतुल वेदना भरेगा !

सङ्कट, साहस, सङ्घर्षों से
था कितना अनुराग तुम्हारा।
पद-पद पर परास्त असफलता
तुम से, महामरण भी हारा !

तुम अजरामर, तुम चिर-उज्ज्वल,
महाज्योति के पुञ्ज, वीरवर,
फैल गए बन कण प्रकाश के
जन-जन के मन-मन में घर-घर !

सीमाएँ तुम तोड़ चुके थे;
मुक्त राष्ट्र की यह तरुणाई,
भेद-भाव सब भुला, तुम्हारी
स्मृति में श्रद्धाञ्जलि भर लाई !

नेताजी सुभाष की स्मृति

जहाँ कहीं हो, स्वीकृत कर लो,
मातृभूमि के हे प्रिय स्मृतिधन,
सबके महामिलन का वन्दन,
स्नेह-प्रसून, नयन के जलकण !

७/११/४८

शहीद की विधवा से

(१)

एकाकिनी आज इस जग में,
आदर्शों के ज्योतिपुञ्ज की एक शुभ्र रेखा-सी,
तुम महिमामयि !
भूल गए फाँसी पर प्रियतम ।
क्षण-भर में चढ़ गया मातृमन्दिर में
जीवन का सर्वस्व तुम्हारा प्यारा ।
तुम सजीव स्मृति
तरुण तपस्वी उस साधक की,
जिसने हँसकर झोंक दिए निज प्राण
महाक्रान्ति-पथ की भीषण ज्वाला में ।
वन्दनीय तुम,
गौरव-निधि तुम,
ओ शहीद की विधवा !
अखिल राष्ट्र का तुमको मूक नमन !

(२)

मानव ही थे तुम दोनों—यह
मानो जग को जतलाने को,
आदर्शों को साध्य बनाकर
मानवता का बढ़वाने को पदगौरव-सम्मान,
एक-दूसरे के जीवन में
पति-पत्नी बन आए दोनों।
केवल एक वसन्त मिलन का,
वह भी उन्मन
क्रान्ति-पुजारी प्रिय के उन उच्छ्वासों से,
जो पीड़ित मानवता की स्मृति से थे आकुल!
मुसकानों के, फूलों के वे कितने-से क्षण
तुमने देखे, तुमने जाने!
वह जीवन था नहीं तुम्हारा जीवन।
आगे आया ज्वालाओं का,
कुश-काँटों का, चट्टानों का
दुर्गम जीवन-पथ प्रियतम का!

(३)

स्नेह इधर, सङ्घर्ष उधर!
प्रिय की दुविधा तुमने कर दी दूर,
एक दिवस हँसकर चिर-दिन को अनुमति देकर।
मुक्त हुई गति स्वतन्त्रता-साधक की।
एक-एक पद को बलि-पथ पर
शुद्ध स्नेह की निर्मल स्मृति से
मिलने लगा शक्ति का सम्बल अथक, अटूट।
कर्म, कर्म, अविराम कर्म था जीवन!
सङ्घर्षों की प्राण-वायु से पूर्ण श्वास प्रत्येक।
एक साध थी, एक साधना केवल—

टूटें बन्धन मानवता के, हो नवयुगनिर्माण,
नई व्यवस्था में मानव हो उन्नत, सुखी, स्वतन्त्र !

(४)

किन्तु, न निज पथ पर चल पाया
अधिक दिनों तक वीर ।
भ्रम, हिंसा, भय, दमन खा गए मिलकर उसको हाय !
शोषकदल की लोलुपलिप्सा का वह हुआ शिकार ।
विश्व, देश, मानवता का वह रत्न अमूल्य !
उसको खोकर खोया तुमने क्षण-भर धैर्य !
बुझने को हो गई हृदय की साहस-ज्योति ।
पर, फिर आया ध्यान—
प्रिय की है साधना अधूरी !
उनकी थाती यही तुम्हारे पास—
एक-एक क्षण इस जीवन का,
एक-एक कण रक्त, स्वेद का,
जो कुछ शेष तुम्हारा अपना,
सब हो हँसते-हँसते क्रमशः
प्रिय के प्यारे उसी लक्ष्य के हित उत्सर्ग !

(५)

अश्रु ?
अश्रु नहीं, छिः, पोंछो अश्रु !
रक्त, चाहिए रक्त, विश्व को निर्मल रक्त;
स्वेद चाहिए, अविरत श्रम का स्वेद !
कर्म चाहिए अथक, साधना मूक, अखण्ड,
अपराजित उत्साह, सिद्धि तक चिर-सङ्घर्ष !
सबसे उज्ज्वल मिली विरासत तुमको, देवि !
अनुगामी हो तुमसे बढ़कर

शहीद की विधवा से

कौन तुम्हारे पति का जग में ?
कौन साधना करे अधूरी पूर्ण ?
तुम्हीं रखोगी बलि-दीपक की जाग्रत ज्योति !
तुम्हीं करोगी नवयुग का आह्वान !

(६)

है 'आदर्श' लाभ मानव का अपने अन्दर आप;
आदर्शोन्मुख मनुज चाहता और न कुछ प्रतिदान ।
चढ़ा चुकीं पति, निज का दो अब नीरव आहुति-दान ।
जब जीवन की अथक साधना की समाप्ति पर पाओ
विस्मृति और उपेक्षा जग से, करना मत आश्चर्य !
खिन्न न होना,
खर्व न होना तुम क्षण-भर को,
यह सङ्कीर्ण स्वार्थ की दुनिया
भूल जाय यदि तुम्हें एक दिन,
दूर ग्राम की जीर्ण कुटी में
जीवन के अन्तिम क्षण बीतें !
रखना पति को याद !

२७/२/४५

राष्ट्र-वीरों के स्वागत में

स्वागत, वीरो, आज तुम्हारा !

(१)

शोषण की निशि बीत रही है,
हटा दासता-तम जाता है ;
आज़ादी का सूर्य क्षितिज पर
अपनी लाली दिखलाता है ;
नव-युग के प्रभात में जागा
विश्व, एशिया, भारत सारा !
स्वागत, वीरो, आज तुम्हारा !

(२)

कोटि-कोटि जनता ने जब की
अन्तिम विप्लव की तैयारी,
मचल उठा तूफ़ान क्रान्ति का
जब कृषकों, श्रमिकों में भारी,
मुकुट और सिंहासन काँपे,
तड़के बन्धन, टूटी कारा !
स्वागत, वीरो, आज तुम्हारा !

(३)

प्राणों का दे रक्त तुम्हीं ने
नया राष्ट्र-इतिहास बनाया,
पीड़ित और दलित मनुजों को
सिर ऊँचा करना सिखलाया,
भीषण सङ्घर्षों में तुम से
बार-बार शोषक-दल हारा !
स्वागत, वीरो, आज तुम्हारा !

(४)

शत-शत क्रान्ति-व्रती बलिपन्थी
अमर हुए दे प्राण जहाँ पर,
वह विद्रोह-भूमि बलिदानी
स्वागत-श्रद्धा-नत है सादर !
आज तुम्हारे ज्योति-दान से
क्रान्ति-दीप फिर जले हमारा !
स्वागत, वीरो, आज तुम्हारा !

१२/४/४७

स्वतन्त्रता के बाद

नव-निर्माण

स्वस्थ स्वरों के स्वामी बनकर,
मुक्त-गगन-पथ-गामी बनकर,
तुमने जग का आदर पाया
स्वतन्त्रता-व्रत-धारी नभचर !

किन्तु, एक दिन देखा तुमने—
बद्ध हुआ जीवन बन्धन में ;
रही गूँजती आह तुम्हारी
कुछ दिन, मानो, खिन्न गगन में ।

उस बन्धन में आत्म-ज्योति की
किरणें क्रमशः बुझीं तुम्हारी,
पङ्ख और पद शिथिल हो गए,
क्षीण हुईं आशाएँ सारी ।

विवश दासता के पिंजरे में
यौवन-क्षण बहुमूल्य बिताए ।
क्षुद्र परिधि में जीवन के सब
महत् स्वप्न चुपचाप मिटाए ।

सहसा किसी प्रेरणा से तुम
किसी विलक्षण क्षण में जागे;
देखा—पीछे रही निराशा,
अथक साधना-पथ था आगे।

एक-एक कर तुमने अपने
स्वयं छिन्न कर डाले बन्धन!
आज जयध्वनि बनकर गूँजा
कल का विवश मौनमय क्रन्दन।

सफल हुआ 'सङ्घर्ष' तुम्हारा,
'नूतन-सृजन'-पर्व अब लाओ,
खग, 'विद्रोह'-गीत के गायक,
स्वर में अब 'निर्माण' मिलाओ।

मुक्त गगन में उड़ने को अब
फिर निज पङ्ख सशक्त बनाओ;
श्वास-श्वास में नूतन स्पन्दन,
नस-नस में नव-रक्त जगाओ।

१०/३/४८

मुक्त राष्ट्र के तरुणों से

खोलो द्वार रुद्ध मानस के,
गई दासता-रात !
जल, थल, नभ पर स्वतन्त्रता का
फैला शुभ्र प्रभात !

जो 'अछूत' कहलाकर
अपमानित थे मनुज अनेक,
दे समत्व का स्थान, करो
उनका आदर-अभिषेक !

मुक्त करो शिशु को, नारी के
सब बन्धन दो खोल !
मुक्त मनुजता की जय से
गूँजे भूगोल-खगोल !

विस्तृत वसुधा के कण-कण के
तुम्हें बुलाते प्राण,
मुक्त दिशाओं का प्रस्तुत है
आज अभय-वरदान ;

सुनो नील निस्सीम गगन के
अन्तर का आह्वान !
हे तारुण्य स्वतन्त्र राष्ट्र के !
सुनो सिन्धु का गान !

करो हिमालय के शिखरों पर
अन्वेषण-अभियान !
प्रकृति तुम्हारी सहचर,
अनुचर ज्ञान और विज्ञान !

मांसल बाहु, भाल उन्नत,
दृढ़ पदक्षेप सविवेक,
हो उदार तव दृष्टि
कि जिसमें अखिल विश्व हो एक !

मातृभूमि का भरो निरन्तर
वैभव-कोष विशाल,
पर, जग का कोई कोना
तुमसे न बने कङ्गाल !

तुम जिसकी जय-ध्वजा,
राष्ट्र की वह दृढ़ नींव किसान,
कभी न भूलो उसे कि उसका
अतुलनीय है दान !

और, राष्ट्र-निर्माता, जो
पा सका न आगे स्थान,
पीछे रह श्रम करने वाला
वह मज़दूर महान !

इन दोनों के रक्त-स्वेद का
अथक मूक बलिदान
लाया नवयुग, नवजीवन,
नवसंस्कृति, नया विधान !

मुक्त राष्ट्र के तरुणों से

चलें सिन्धु की लहरों पर
गिरि-से विशाल जल-यान
और व्योम में उड़ें तुम्हारे
द्रुतगति विपुल विमान,

किन्तु, करो भू पर श्रम
करने वालों का सम्मान !
शक्ति-स्रोत हैं अथक
तुम्हारे ये मज़दूर-किसान !

सेवक बनो, बनो प्रहरी, तुम
इनके सैनिक वीर,
रक्षक बनो, इन्हीं के हित में
अर्पित करो शरीर !

निज प्रतिभा, मेधा का तानो
ऐसा महा - वितान,
जिसकी छाया में सुख पावें
ये मज़दूर - किसान ।

ऊपर राजनीति-इङ्गित पर
जब तुम भरो उड़ान,
नीचे चक्र और हल के
चालक गाते हों गान !

३/११/४८

पन्द्रह अगस्त पर

गाँधी का सारा जीवन ले,
तरुणों के ले प्राण,
युग-युग के बलिदानों का यह
मिला तुम्हें प्रतिदान !

अपनी भू, अपने नभ, जल पर
है अपना अधिकार !
भव्य भविष्यत् देख तुम्हारा
विस्मित है संसार !

सर्वतन्त्र - स्वातन्त्र्य तुम्हारा,
नव, लौकिक जनतन्त्र
हो हिमगिरि-सा सुदृढ़, न इस पर
चले प्रलोभन - मन्त्र !

लौह-शृङ्खला तोड़ चुके, पर,
सोने की ज़ंजीर
कहीं न बाँधे तुम्हें, सजग
पद-पद पर रहना, वीर !

पन्द्रह अगस्त पर

चाहे जग रणमत्त बहावे
शोणित वारम्वार,
बुद्ध और गाँधी का पथ
पथ भारत का अविकार !

देश-देश में अथक तुम्हारा
अभिनन्दन - सम्मान,
करतल-करतल में व्याप्त तुम्हारा
स्वागत, मङ्गल - गान ।

जय स्वतन्त्र भारत के मानव,
जय जग के अभिमान !
मुक्त विश्व-मनुजों में पाया
तुमने गौरव - स्थान !

जब तक विजय-गीत के स्वर से
गूँजा देश-विदेश,
आ पहुँचा अरुणाभ दिशा से
एक नया सन्देश ।

एक नया सन्देश, कि जिसने
हिला दिया संसार—
मानव-मात्र चाहता सुख से
जीने का अधिकार ।

तीव्र क्षुधा समता, समृद्धि की
जाग उठी है आज,
आन्दोलित हो उठा उसी से
सहसा सभी समाज !

एक नया अभियान सामने,
एक नया आह्वान !
नवयौवन फिर उठा, चला फिर
करने नव बलिदान !

हर्ष, गीत, पुष्पों के जग का
स्वागत सब स्वीकार ;
पर, रुकने-थकने में विजयी
भारत की है हार ।

आज पर्व-दिन आजादी का
कहता यही पुकार —
पथिको, अभी और चलना है,
हो जाओ तैयार !

मिल-जुलकर निर्मित करना है
ऐसा हिन्दुस्तान —
जिसमें अन्न, वस्त्र, घर, संस्कृति
पावें सब इन्सान ।

भारत क्या है ?
उच्चादर्शों के पुञ्जों का नाम !
भारत क्या है ?
अविरत बलि-पथ के पथिकों का धाम !

भारत सतत प्रगति का साधक,
भारत अथक, अनन्त !
भारत रुका कि होगा कवि के
सब स्वप्नों का अन्त !

१५/८/४९

समता की ओर

ऐसा वसन्त कब आएगा ?

ऐसा वसन्त कब आएगा,
जब मानवता के वन-उपवन का
हर प्रसून खिल पाएगा ?
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

लड़कर अभाव के पतझड़ से,
नव-सृजन-समर में विजयी बन,
सुख-सुविधा-रस के सम-वितरण का
पा नवयौवन-मय जीवन,
हर मनुज-कुसुम सन्तोषमयी
मुसकान मधुर बरसाएगा,
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

ऐसे वसन्त कुछ चले गए,
जो कुछ फूलों को खिला गए,
मानव-प्रसून जो ऊपर थे,
उनको सौरभ-श्री दिला गए ;
नीचे रहने वालों पर कब
कोई ममत्व दिखलाएगा ?
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

प्रासादों ही का नहीं,
कुटी का आँगन भी तो है आँगन,
सुख-दुख पर होता है समान
हर मानव के उर में स्पन्दन ;
सब के प्राणों का पुलक बने,
ऐसा क्षण कौन बुलाएगा ?
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

कवि के मानस में स्वप्न बना
छाया था जो सीमित वसन्त,
होगा जन-जन के जीवन में
साकार, विपुल, जब वह अनन्त,
जब मनुजों का जग भू पर ही
अभिनव 'नन्दन' बन जाएगा,
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

सब का समान रवि है, शशि है,
सब का समान है मुक्त पवन ;
सारे मानव यदि मानव हैं,
सबके समान हों भूमि-गगन !
कब नवयुग ऐसी नव संस्कृति,
नव विश्व-व्यवस्था लाएगा ?
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

श्वासों के सूत्रों से जिसने
स्वागत को हार बनाया है,
नयनों के ज्योति-कणों से जो
आरती सजाता आया है,
अब अथक प्रतीक्षा जो उस
चिर-शोषित की सफल बनाएगा,
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

ऐसा वसंत कब आएगा

सब को दे भोजन, भवन, वसन,
जिससे जीवन में रस छाए,
खिल जायँ अधर, हँस दें आँखें,
ऐसा वसन्त जग में आए !
ऐसा वसन्त तो ग्रीष्म-शिशिर—
में भी वसन्त कहलाएगा !
ऐसा वसन्त कब आएगा ?

२/२/४६

*

मन्वन्तर

अब तक विश्व महत्ता का
पद-वन्दन करता आया है;
विद्रोही युग लघुता के
आदर के दिन अब लाया है।

किस निधि की ख़ातिर
प्रस्तर पर पुष्प चढ़ाने जाना है?
मानवता प्रत्येक मनुज के
उर में छिपा ख़ज़ाना है।

जो लघु थे, जो त्यक्त, उपेक्षित,
जो विरक्ति-भाजन, एकान्त,
उनकी अवहेला का लाया
अन्त विश्व में आज युगान्त।

जो शोषित, उच्चत्व जिन्हें था
नित्य दलित करता आया,
उन मनुजों का स्वाभिमान अब
जन-जन में जाग्रति लाया।

अब न झुकेगा जाग्रत मानव,
नित्य रखेगा उन्नत शीश ;
स्नेह चाहिए इसे, न वाञ्छित
गुरुता का वर या आशीष ।

यह अभिनव युग आज़ादी का,
समता, प्रगति, क्रान्ति का काल ;
देवासन, साम्राज्य, विभव को
बने चुनौती नर-कङ्काल ।

छोटे से छोटे मानव को
आज स्नेह का है आह्वान ;
मुक्त हृदय में हर मानव के
मानव-ममता को है स्थान ।

आत्म-ग्लानि से मुक्ति-प्राप्ति का
नव संदेश आज आया ;
अब न रहेगी मानव-उर पर
लघुता के तम की छाया ।

समता, स्नेह, स्वतंत्र-भाव से
मानव-मानव हों संयुक्त :
वन्दन, अभिनन्दन मानव का
गुरुता-लघुता से हो मुक्त ।

मन्वन्तर आया, महिमा का
माप-दण्ड अब अभिनव है .
मानव का सब से महान
यह गौरव—मानव मानव है !

१८/३/४६

बढ़ो, वीर, नव-पथ पर !

(१)

घर-घर में दैन्य अभी,
कुटी-कुटी में अभाव,
मानवता क्षुधित, तृषित,
वसनहीन, अनिकेतन,
रुग्ण, अपढ, रुद्ध-प्राण,
वञ्चित है संस्कृति से,
सच्ची स्वतन्त्रता से,
समता, समृद्धि से भी !
बदलो यह विषम विश्व;
समता की अरुण-प्रभा
फैला दो कण-कण पर,
जन-जन के मन-मन में
महाक्रांति-ज्वाला की
एक नई ज्योति प्रखर
जगमग कर जाग्रत, तुम
बढ़ो, वीर, नव-पथ पर !

(२)

लक्ष्य साधना का वह
दूर अभी, दूर अभी !
स्वप्न हैं अपूर्ण अभी ।
यौवन ने जो कुछ था
कर्म और चिन्तन से
नव-सञ्चित पुञ्ज किया
तप का, गवेषणा का,
निष्फल वह सभी अभी ।
अन्तर् से उठती है
वेदना की हूक यह—
क्या यह स्वतन्त्रता है ?
क्या है यह लोकतन्त्र ?
क्या इसके हेतु किया
तर्पण व लि-वेदी का
जनता ने रक्त चढ़ा ?
(अब तक है गीली वह !)

(३)

नेता, शासक समृद्ध,
जनता कङ्गाल, दुखी !
पत्तों का सिञ्चन यह,
मूल की उपेक्षा यह !
ऊपर यह दम्भ और
नीचे यह दैन्य, क्लेश !
मिथ्या यह आज़ादी,
मिथ्या यह लोकतन्त्र !
तोड़ो यह महाजाल
छलना, प्रवञ्चना का !

आगामी समता की,
सच्ची स्वतन्त्रता की,
संस्थापन-आशा के
केन्द्रस्थल ! तरुण-वीर !
वन्दन लो तुम कवि का,
अभिनन्दन, नव-स्वागत !

(४)

इन थकने वालों को,
इन रुकने वालों को,
थकने दो, रुकने दो,
करने दो प्रतिफल का,
सत्ता का, वैभव का
भोग; किन्तु, तुम न थको,
तुम न रुको; बढ़े चलो
समता के उस पथ पर,
तरुणों का जो पथ है,
वीरों का जो पथ है !
तुम स्वतन्त्र करो उसे,
तुम समृद्ध करो उसे,
युग-युग से शोषित जो,
युग-युग से वञ्चित जो,
नीचे जो दलित पड़ा !
बढ़ो, वीर, नव-पथ पर !